ज्ञान-विज्ञान बुलेटिन

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति का अनियतकालीन संवाद-पत्र

रोहतक, अंक 41 (सम्मेलन विशेषांक) 30 जून 2026 सहयोग राशि : 20 रुपए

परामर्श मंडल :
सतीश कालड़ा
सुरेंद्र कुमार
रणबीर सिंह दहिया
वी.बी. अबरोल
संतोष मुद्गिल
मंगतराम शास्त्री

सम्पादक मंडल :
प्रमोद गौरी
मनीषा
वेदप्रिय
वज़ीर सिंह
सुरेश कुमार
अनिता शर्मा

वितरण :
वेदपाल

अपनी बात

जनतांत्रिक मूल्य और हमारा सफ़र

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति का ग्यारहवां राज्य सम्मेलन दिनांक 11 अप्रैल से 13 अप्रैल तक करनाल में सम्पन्न हुआ। 1995 में जींद शहर में समिति का प्रथम सम्मेलन हुआ था। समिति की स्थापना के समय जो परिस्थिति थी, उसकी एक-दो बातों का उल्लेख यहां सार्थक होगा। साक्षरता अभियान का सार लगभग क्षीण हो रहा था। सत्ता पक्ष 5 साल तक साक्षरता अभियान को बनाए रखने के बाद आगे ले जाना नहीं चाहता था। उसे भय था कि लोग सवाल उठाने लगे हैं जिनका सामना करने के लिए ईमानदारी और पारदर्शिता के बुनियादी नियम को अमल में लाना पड़ेगा। इसके लिए वह तैयार नहीं था। सो अभियानों को ही शिथिल बना दिया गया। दूसरी तरफ़, समाज के आधारभूत तबके, यानी महिलाएं, दलित और युवा, साक्षरता अभियान के रूप में मिले अभिव्यक्ति के मंच को खोना नहीं चाहते थे। इस अंतर्विरोधपूर्ण स्थिति में देश-भर में अभियान का नेतृत्व करने वाली भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के सामने अपनी दिशा तय करने की चुनौती खड़ी हुई। राष्ट्रीय स्तर पर पूरे देश के लिए अभियान के उपरांत बड़ा कार्यक्रम प्रस्तुत करना संभव नहीं हुआ तो राज्यों को अपने तौर पर साक्षरता अभियान के बाद समाज में हस्तक्षेप बनाए रखने की समझ बनाने के लिए कहा गया।

हरियाणा के साक्षरता कर्मियों के अगुआ हिस्से के पास 1980 के दशक में हुई चर्चाओं पर आधारित दृष्टि मौजूद थी। आगे बढ़ने से पहले हम जान लेते हैं कि यह दृष्टि क्या थी। हरियाणा के जनपक्षीय बुद्धिजीवी 1980 के शुरुआत के वर्षों में यह समझ रहे थे कि हमारे प्रांत में हरित क्रान्ति का सकारात्मक प्रभाव हुआ है लेकिन यह एक हिस्से की आर्थिक उन्नति को ही दर्शाता है। प्रांत की अधिकांश आबादी गरीब है, यानी आर्थिक असमानता न सिर्फ़ बरकरार है बल्कि बढ़ी भी है। दूसरी बात जो समझी गई, वह यह थी कि जिन लोगों ने आर्थिक उन्नति कर भी ली है उनमें भी अर्धसामंती मूल्य बने हुए हैं, यानी आर्थिक विकास के बावजूद कोई मानसिक बदलाव इंगित नहीं हुआ। यह समाज खासतौर पर पितृसत्ता, पुरुषप्रधानता और सवर्ण जातियों के वर्चस्व को मज़बूती से पकड़े हुए है। यही अर्धसामंती मूल्य हैं। इनके चलते महिलाओं, दलितों और युवाओं को सामाजिक जीवन में घोर गैर-बराबरी का दंश झेलना पड़ता है। ऐसे समाज में जो नवधनाढ्य वर्ग उभरा, उसमें आधुनिक मूल्य व्यवस्था तो विकसित नहीं हुई परन्तु अत्यधिक साधन होने से उपभोक्तावाद की संस्कृति पनप गई या दूसरे शब्दों में कहें तो साधनों का संचय और धन का अपव्यय। इस तरह यह

धर्म सामंती मूल्यों वाले ऐसे समाज में जो नवधनाढ्य वर्ग उभरा, उसमें आधुनिक मूल्य व्यवस्था तो विकसित नहीं हुई परन्तु अत्यधिक साधन होने से उपभोक्तावाद की संस्कृति पनप गई या दूसरे शब्दों में कहें तो साधनों का संचय और धन का अपव्यय। इस तरह यह समाज गंभीर सांस्कृतिक विकृतियों का शिकार होता चला गया। युवा वर्ग के सामने जो तस्वीर पेश हुई वह महिलाओं और दलितों को कुचलने और धन का अनाप-शनाप व्यय करने में अपनी शान समझने वाली थी।

समाज गंभीर सांस्कृतिक विकृतियों का शिकार होता चला गया। युवा वर्ग के सामने जो तस्वीर पेश हुई वह महिलाओं और दलितों को कुचलने और धन का अनाप-शनाप व्यय करने में अपनी शान समझने वाली थी। इस स्थिति से युवाओं के एक हिस्से में अवसरवादी होने; निकृष्ट साधनों से आगे बढ़ने; नशा, हिंसा, सेक्स और अपराधों में संलिप्त रहने; राजनीतिक संरक्षण हासिल करके झूठा गौरव अर्जित करने की स्वभावगत मूल्य व्यवस्था बन गई। उधर राजनीतिक स्तर पर अवसरवाद, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और साधनों पर नियंत्रण की प्रवृत्तियां मुखर हो गईं। ऐसी परस्थिति में नागरिक समाज के निर्माण का स्वप्न देखना आसान नहीं था। कुल मिलाकर इसकी ज़रूरत का एहसास शिद्दत से करते हुए, प्रांत में हर ज़िले में सांस्कृतिक मंच बनाए गए। इन मंचों ने प्रांत की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को आम जन के साथ साझा करने में मदद की। हर ज़िले में शिक्षित मध्यवर्ग से कुछ व्यक्ति आगे आए जिन्होंने इस समझ को आत्मसात् किया और प्रांत में स्थापित वर्चस्ववादी मूल्य व्यवस्था के विकल्प के तौर पर जनतांत्रिक मूल्य व्यवस्था अपनाने का संकल्प दर्शाया। इस समझ के साथ समाज में हस्तक्षेप के लिए ठोस कार्रवाई को आगे बढ़ाने की यात्रा बहुत जटिल, रोमांचकारी और चुनौतियों-भरी रही है। इस विस्तृत अनुभव को यहां न तो शामिल किया जा सकता है और न ही इसकी ज़रूरत है। **हां, इतना ज़रूर कहा जाना चाहिए कि जनतांत्रिक मूल्यों को जन चेतना का हिस्सा बनाने का कार्य भिन्न-भिन्न तरीकों से जारी रहा और ज्ञान-विज्ञान आंदोलन का कार्य आगे बढ़ता गया।** इस पूरे 40 वर्षों से अधिक समय में साक्षरता अभियान (जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है) कई मायने में विशेष हैं। पहली बात तो यह है कि इन अभियानों में सरकार की सहायता से ज्ञान-विज्ञान आंदोलन ने स्वयंसेवी संस्थाओं के रूप में नेतृत्वकारी भूमिका निभाई। इन अभियानों के परिणामस्वरूप ज्ञान-विज्ञान आंदोलन की पहुंच सैकड़ों गांवों तक बनी और खासकर महिलाओं और दलितों ने बढ़-चढ़कर इनमें हिस्सा लिया। लेकिन ये अभियान दरअसल सरकार की पहल पर चल रहे थे। इसलिए जैसे ही जन भागीदारी बढ़ी तो सरकार ने इन्हें कुंद कर दिया। इस बात को समझकर ज्ञान-विज्ञान आंदोलन ने निर्णय लिया कि समाज-सुधार का एक व्यापक कार्यक्रम बनाया जाए जिसमें महिलाओं, दलितों और युवाओं को सामाजिक परिवर्तन के लिए नेतृत्वकारी भूमिका में लाया जाए। इसके लिए एक जन संगठन खड़ा किया जाए जो समाज के सहयोग से आगे बढ़े, न कि सरकारी सहायता पर निर्भर हो। यह समझ ज्ञान-विज्ञान आंदोलन की पहले की समझ से आगे बढ़ी हुई थी। इसमें सामाजिक परिवर्तन की दिशा पकड़ने की बात शामिल थी। सामाजिक न्याय के इस संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए ही हम महिलाओं और दलितों को सशक्त बनाते हुए नागरिक समाज का निर्माण कर सकते हैं, यह समझ तो बन गई लेकिन इसे अमली जामा पहनाने की चुनौती बनी रही। पिछले दस वर्षों में हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति पूरी तरह स्वायत्त संगठन की दिशा में आगे बढ़ी है। समिति का 11वां सम्मेलन इसी पृष्ठभूमि में हुआ है।

त्रिवार्षिक सम्मेलन में भागीदारी उम्मीद से अधिक हुई है। इस उत्साह को समझने की ज़रूरत है। इसका एक कारण तो यही है कि संगठन में योजना बनने के उपरांत उसे ज़मीन पर उतारने की कोशिशें थोड़ी बेहतर हुई हैं। परन्तु अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि एक स्वतंत्र जन संगठन के महत्त्व को एक हद तक स्वीकारा गया है, हालांकि इसमें बहुत दिक्कतें भी बनी हुई हैं। आंदोलन का एक हिस्सा अभी इसका महत्त्व कम समझ रहा है। इसलिए सभी कार्यों में सामूहिक ऊर्जा लगाने में कमज़ोरी रह जाती है। तीसरी बात जो बहुत महत्त्वपूर्ण है, वह यह है कि वंचित तबकों की भागीदारी बढ़ी है। यह बढ़ती भागीदारी इस बात का संकेत है कि आंदोलन के विचार की आवश्यकता उन तबकों को अधिक है और उन्होंने इसकी पहचान भी की है। यहां यह रेखांकित करना बहुत ज़रूरी है कि वंचित तबकों का जीवन अनेक ऐसी परिस्थितियों से घिरा रहता है जो उन्हें समाज-सुधार के कार्यों में पूरी ऊर्जा लगाने से रोकती हैं। हम इन परिस्थितियों के साथ वैज्ञानिक समझ के साथ लड़ते हुए ही उन्हें पूरी तरह से शामिल कर सकते हैं। हमने कुछ तरीके तो विकसित किए हैं पर अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि **जनपक्षीय बुद्धिजीवियों ने 1980 के दशक में हरियाणा में सांस्कृतिक प्रगति की जो परिकल्पना प्रस्तुत की थी, उसकी एक झलक हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के 11वें राज्य सम्मेलन में दिखाई दी।** इस मूल्यांकन के साथ-साथ हमें वर्तमान हरियाणा को समझने की भी ज़रूरत है। आज हरियाणा 1980 के दशक से बहुत बदल चुका है। उस समय प्रांत में पितृसत्तात्मक, पुरुषप्रधान और जातीय वर्चस्व के मूल्यों के साथ-साथ उपभोक्तावादी मूल्यों का प्रभाव भी समाज के एक हिस्से में व्याप्त था। आज के दौर में यह मूल्य व्यवस्था तो प्रभावी बनी हुई है और साथ ही हिंदुत्ववादी विचारों के लिए भी नई ज़मीन तैयार हो गई है। **इस दौर की विशेषता यह है कि इसमें तमाम मानवीय, सामाजिक और न्यायसंगत मूल्यों को दरकिनार करके, जीवन का हर क्षेत्र (चाहे शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, रोज़गार या अन्य सभी ज़रूरतें हों) बाज़ार के हवाले हो चुका है। अब हमारा देश कल्याणकारी राज्य के तौर पर कार्य नहीं कर रहा है।** उपयोग की तमाम चीज़ें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कर देकर निजी क्षेत्र से खरीदनी तो होती ही हैं या फिर राज्य को यूज़र फ़ीस देनी पड़ती है। विशाल जन समूह से उगाहा गया अपार धन देश के कुछ घरानों को मिल रहा है। इसके साथ ही साम्प्रदायिकता की विचारधारा आज़ादी के बाद पहली बार इतनी ताकतवर हो गई है कि देश की हर संस्था और पूरे समाज पर इसका नियंत्रण हो गया है। इस अभूतपूर्व स्थिति के तमाम पहलुओं को समझने की ज़रूरत है ताकि हम वंचित तबकों के हितों के लिए सचेत होकर कार्य करते हुए ज्ञान-विज्ञान समिति का विस्तार करें और हरियाणा को नागरिक समाज बनाने के प्रयास को गंभीरता से आगे बढ़ाएं। आने वाले अंकों में इन चर्चाओं को हम जारी रखेंगे। ✍

जन विज्ञान और वैज्ञानिक मानसिकता

– सत्यजीत रथ

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के राज्य सम्मेलन के उद्‌घाटन सत्र में प्रतिरक्षा वैज्ञानिक एवं अखिल भारतीय जन-विज्ञान नेटवर्क के अध्यक्ष डॉ. सत्यजीत रथ का वक्तव्य

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के 11वें राज्य सम्मेलन के अवसर पर आओ हम अपने जीवन और समाज में होने वाले कामों के ज़रिये समझें कि वैज्ञानिक मानसिकता कैसे हमारे व्यवहार में रहती है। एक किसान बारिश के मौसम से पहले जब अपनी फ़सल बोता है तब उसे पता होता है कि आगे आने वाले दिनों में बारिश होगी। मान लीजिए किसी बाबा ने जो केदारनाथ या ऋषिकेश के घाट पर बैठे हैं, कह दिया कि जनवरी में बारिश आनी है, इसलिए फ़रवरी में आप फ़सल बो दीजिए तो क्या किसान उसकी बात मानेगा? वह नहीं मानेगा क्योंकि किसानों का सांझा अनुभव है कि बारिश तो जून-जुलाई के महीनों में आती है। कहने का अर्थ यह है कि किसान वैज्ञानिक परिभाषा का प्रयोग करते आ रहे हैं। दरअसल पिछले 5000 सालों से सभ्यताएं वैज्ञानिक सोच का इस्तेमाल करती आ रही हैं। यह हमारे लिए कोई नई चीज़ नहीं है, वैज्ञानिक सोच हमारे लिए विरासत है। हमें लोगों को यह नहीं बताना कि आप वैज्ञानिक सोच को अपनाओ जो आज तक आपने नहीं अपनाई। हमें उन्हें यह बताना है कि वैज्ञानिक सोच हमारी विरासत है जिसे बीच-बीच में ज़िंदगी के किसी न किसी क्षेत्र में हम छोड़ देते हैं। इसे छोड़ना हमारे लिए लाभ की बात नहीं है। हमें यह समझना है कि किस प्रकार से शोषक वर्ग हमें यहां तक ले आते हैं कि हम वैज्ञानिक सोच को एक ओर रख दें और उनके फैलाए हुए अंधविश्वास को अपनाएं। ज्ञान-विज्ञान आंदोलन का संकल्प है कि हम इस षड्‌यंत्र को समझकर विज्ञान की अपनी विरासत को ज़िंदगी के हर एक कोने को प्रकाशमय करने में लगाएं। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण और देता हूं। जब हम सड़क पार करते हैं तो बाएं-दाएं देखते हैं, वैसे तो नहीं चल पड़ते। सभी तरफ़ देखकर हम अपने दिमाग में अनुमान लगाते हैं – जो गाड़ी आ रही है उसकी रफ़्तार क्या है? क्या हम निकल जाएंगे? हमारी रफ़्तार कितनी है? इस तरह हम भूमिति प्रमेय (geomatrical theorem) का प्रयोग करते हैं। यह वैज्ञानिक सोच ही तो है। हम हमेशा ज़िंदगी के हर मसले में वैज्ञानिक सोच प्रयोग करते हैं। फिर छोड़ते कब-कब हैं; और कहां छोड़ते हैं; वैज्ञानिक सोच चीज़ क्या है?

मैं एक प्रतिरक्षा वैज्ञानिक होने के नाते एक और बात बताता हूं। एडवर्ड जेनर का नाम आपने सुना होगा। बच्चों की किताबों में एडवर्ड जेनर का ज़िक्र इसलिए होता है क्योंकि उन्होंने चेचक का टीका बनाया। बच्चों की स्कूली पुस्तकों में एक बॉक्स में छवि के साथ एक कहानी भी होती थी जो सरासर मनगढ़ंत कहानी है। सच्चाई कुछ और है, वह है कि यदि किसी बीमारी के साथ (खास करके किसी संक्रामक बीमारी के साथ) एक बार हमारी लड़ाई हो जाती है तो शरीर में प्रतिरक्षा के ऐसे साधन बन जाते हैं जिनसे दोबारा वही संक्रामक बीमारी अगर लग जाए तो उसका असर नहीं होता। यह हुआ सिद्धांत। अब इस सिद्धांत को ईजाद कैसे किया गया। अब यहां कोई एडवर्ड जेनर नाम का गुरु नहीं आया जिसके दिमाग में यह बात आ गई। बल्कि बात यह है कि चेचक की बीमारी इंसान में बार-बार आया करती थी। लोग बीमार पड़ जाते थे और बीमार लोगों की देखभाल करने के लिए अन्य लोगों की ज़रूरत होती थी। ज़ाहिर है कि समाज में जब बीमार लोगों की देखभाल करनी होती है तो वह काम आदिकाल से औरतों के ज़िम्मे आता है। इसलिए महिलाएं बार-बार यह देखा करती थीं कि चेचक के बीमार रोगियों की देखभाल करने के लिए किसी को भेजो तो उसको भी चेचक की बीमारी लग जाती है। सिर्फ़ उन लोगों को नहीं लगती जो पहले चेचक के शिकार बन चुके हैं लेकिन बच गए हैं। इसका मतलब यह हुआ की

महिलाओं ने बार-बार निरीक्षण करके अनुभवों के आधार पर एक सिद्धांत बना दिया। यह सिद्धांत क्या था कि एक बार किसी बीमारी के साथ लड़ लिया जाए तो अगली बार उस बीमारी का उतना असर उतना नहीं होता जितना पहली बार होता है। यह बड़ी वैज्ञानिक सोच है और यह एक गुरु ने नहीं बनाई। यहां बात यह है कि मनुष्य के इस विस्तृत अनुभव से जो समझ बनी, क्या इसका कोई उपयोग या कोई फ़ायदा भी है? स्पष्ट है कि दो तरीकों के फ़ायदे हैं। एक तो हमें पता है कि गांव में किसको पहले चेचक बीमारी हो चुकी है क्योंकि व्यक्ति के चेहरे पर निशान होते हैं। अगर यह बीमारी आगे पहुंचे तो उन्हें देखभाल करने के लिए भेजा जा सकता है। दूसरा फ़ायदा है, जो बार-बार हमें बताया जाता है कि विज्ञान से दवाई बनती है, टीके बनते हैं। लेकिन जो अभी वैज्ञानिक सिद्धांत का फ़ायदा आपके बीच रखा वह किसी एक तकनीक का फ़ायदा नहीं है, किसी साधन का फ़ायदा नहीं है, वह सामाजिक नीति बनाने का मुद्दा है जो बताया नहीं जाता। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। समाज के हित का सिद्धांत यह है कि पहले चेचक की बीमारी से निकला हुआ इंसान दोबारा उस बीमारी का शिकार नहीं होता। इसलिये चेचक के रोगियों की देखभाल के लिए ऐसे लोगों की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। जब महामारी आए तो इकट्ठा करके सार्वजनिक स्वास्थ्य में उनकी खास शिरकत करवाई जाए। यह हुई सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति जो वैज्ञानिक सोच और समझ के आधार पर बनाई गई।

जैसे ही समाज के फ़ायदे की चीज़ बनी, वैज्ञानिक सोच-समझ मुनाफ़ाखोरी का विषय बन गई क्योंकि उससे कुछ मूल्य मिलता है, कुछ फ़ायदा होता है और जिस चीज़ से फ़ायदा होता है, उन सभी चीज़ों को अपनाने के लिए शोषक वर्ग मौजूद है ही। तो जैसे-जैसे वैज्ञानिक सोच का फ़ायदा सामने आने लगा, वैसे-वैसे शोषक वर्ग ने वैज्ञानिक सोच को अपनी तरफ़ ढालना शुरू कर दिया; उसका आम समाज से रिश्ता तोड़ना शुरू कर दिया। यहां तक कि आज जहां हम खड़े हैं, वहां जनता समझती है कि वैज्ञानिक सोच कोई पराई चीज़ है जबकि वैज्ञानिक सोच *निरीक्षण और अनुभव* से बनती है।

हमारा कहना यह है कि वैज्ञानिक सोच तब सही मायने में सामने आती है जब उसे सामाजिक-प्रशासनिक नीतियां बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। लेकिन क्या विज्ञान से साधन नहीं बनते? बिल्कुल बनते हैं। हमें जो लोक विज्ञान चाहिए वह इस तरह का सांझा, यानी नीतियां और साधन दोनों बनाने का, लोक विज्ञान चाहिए। इस मुद्दे पर लोग सवाल करते हैं कि ये सब आदर्श बातें हैं जबकि सच्चाई तो यह है कि साधन ऐसे नहीं बनते, दवाइयां ऐसे नहीं बनतीं, टीके ऐसे नहीं बनते। इन बातों के लिए भी हमारे पास जवाब है। हम पूछते हैं - टीके कौन बनाता है? पिछली महामारी की बात सबको याद है कि टीके किसने बनाए थे। टीके बनाए थे निजी कंपनियों ने। लेकिन सोचने वाली बात यह है कि कोविड के जो टीके हिंदुस्तान में बने, जो भारतीय विज्ञान से निर्मित कोविड का टीका बना, उसे ईजाद किसने किया। हमारे-आपके पैसों से जो इंडियन काउंसिल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च चलती है, उन संस्थानों ने कोविड-19 के टीके का निर्माण किया। अगर जनता के पैसों से निर्माण हुआ तो जनता के काम में बिल्कुल आना चाहिए, जनता को मुफ़्त मिलना चाहिए। अगली बात यह है कि जनता तक पहुंचाने के लिए कौन बनाएगा? बनाने के लिए बड़े पैमाने पर उद्योग चाहिए। जिन उद्योगों में बड़े पैमाने पर टीके का निर्माण हो, वे उद्योग कहां से आएंगे? आज यह सब निजी कंपनियों में होता है। एक ज़माना था जब हिंदुस्तान में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक उद्योगों में दवाइयां और टीके बना करते थे। पिछले 40 सालों में हमने धीरे-धीरे इन सारे सार्वजनिक उद्योगों को खारिज कर दिया। अब निजी उद्योगों के पास जाना होता है। अब आप देखें जैसा कि चेचक का एक सिद्धांत बन गया। सिद्धांत की वजह से महामारी के दौरान हस्तक्षेप करने की हमारी क्षमता बढ़ गई। हम अच्छी नीति बना सके, हम टीका बना सके, अच्छे साधन बना सके। इसका मतलब यह हुआ कि वैज्ञानिक सोच के माध्यम से समाज के फ़ायदे की चीज़ बनने लगी। जैसे ही समाज के फ़ायदे की चीज़ बनी, वैज्ञानिक सोच-समझ मुनाफ़ाखोरी का विषय बन गई क्योंकि उससे कुछ मूल्य मिलता है, कुछ फ़ायदा होता है और जिस चीज़ से फ़ायदा होता है, उन सभी चीज़ों को अपनाने के लिए शोषक वर्ग मौजूद है ही। तो जैसे-जैसे वैज्ञानिक सोच का फ़ायदा सामने आने लगा, वैसे-वैसे शोषक वर्ग ने वैज्ञानिक सोच को अपनी तरफ़ ढालना शुरू कर दिया; उसका आम समाज से रिश्ता तोड़ना शुरू कर दिया। यहां तक कि आज जहां हम खड़े हैं, वहां जनता समझती है कि वैज्ञानिक सोच कोई पराई चीज़ है जबकि वैज्ञानिक सोच *निरीक्षण और अनुभव* से बनती है।

एक तरफ़ तो जो पैसा बनाना चाहते हैं, मुनाफ़ाखोरी करना चाहते हैं, वे लोग हैं और दूसरी तरफ़ वैज्ञानिक सोच है जिसके ज़रिए ये सारे साधन बनते हैं। सवाल है कि आप किस तरीके से पैसा बना रहे हैं। अगर आप वैज्ञानिक सोच को मुनाफ़ाखोरी में बदल रहे हैं तो आप लोगों से यही कहेंगे कि विज्ञान के सारे तत्त्व और सारे सिद्धांत हम जानते हैं, लोग नहीं जानते। इसलिए आप हमारी बात सुनो, हमारी बात पर पूरा यकीन करो और यकीन के साथ-साथ आप हमें पैसे देकर जाओ। यह हुई बाबा महाराजों की आज्ञा। यहां मैं बताना चाहता हूं कि किस तरीके से महाराष्ट्र में अंधविश्वास

निर्मूलन आंदोलन हुआ। अंधविश्वास निर्मूलन आंदोलन के प्रेरणा स्रोत थे डॉक्टर नरेंद्र दाभोलकर। दक्षिणपंथी शक्तियों ने उनका कत्ल कर दिया। वह कहा करते थे कि मैं जिस तरीके से अंधविश्वास के खिलाफ़ झगड़ा कर रहा हूं, उसमें सवाल यह नहीं कि आपने किसी मूल्य पर, किसी व्यक्ति पर, किसी ईश्वरीय शक्ति पर श्रद्धा रखी है, सवाल यह है कि उस श्रद्धा का गलत फ़ायदा उठाकर आपको कोई लूट रहा है। हम उस लूट के खिलाफ़ खड़े हैं, हम आपकी श्रद्धा के खिलाफ़ नहीं खड़े हैं।

मराठी के एक जाने-माने कवि ने अपनी जीवनी में लिखा है कि जब मैं बच्चा था तब दादी से पूछा करता था - दादी भगवान क्या चीज़ है? चूल्हे के सामने रोटी बनाते हुए मेरी दादी मुझसे कहती थी - बेटा जब तू पेट-भर रोटी खाता है न, तब मुझे भगवान दिखता है। अभिप्राय यह है कि भगवान की संकल्पना मूल रूप से वैज्ञानिक है या अवैज्ञानिक, यह अलग बात है। लेकिन यह बात ज़रूर है कि जब उसका गलत फ़ायदा उठाकर लोगों को लूटा जाता है तो यह सरासर नाइंसाफ़ी है। इसके खिलाफ़ वैज्ञानिक और प्रगतिशील शक्तियों को खड़ा होना चाहिए। इसे और स्पष्ट करने के लिए मैं एक और उदाहरण देता हूं। हम सबके पास फ़ोन है। जब हम मोबाइल फ़ोन पर कुछ देखते हैं तो विज्ञापन दिखाई देते हैं। अगर आपको विज्ञापन नहीं देखने तो पैसे देने पड़ते हैं। अगर मुफ़्त में कुछ देखना है तो आपको विज्ञापन देखने पर मजबूर किया जाता है, यानी एक तरह से हमारी ज़रूरत या इच्छा का नाजायज़ फ़ायदा उठाया जा रहा है। अब बात यह है कि अगर हम बाबा महाराजों के खिलाफ़ खड़े होते हैं जो हमारे विश्वास का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं तो फिर हम यह क्यों नहीं सोचते कि जो कंपनियां हम पर इश्तहार/विज्ञापन थोपती हैं तो उनके खिलाफ़ भी तो हमें खड़े होना चाहिए। डॉक्टर दाभोलकर कहते थे कि ये दोनों एक ही चीज़ के अलग-अलग पहलू हैं, दोनों वैज्ञानिक सोच के लिए हानिकारक हैं। अत: हमें दोनों के खिलाफ़ ही खड़े होना है। अब सवाल आता है कि कैसे खड़े हों। मेरा मानना है कि कई तरीकों से खड़े हो सकते हैं। भारत ज्ञान-विज्ञान समिति का साक्षरता का अनुभव बहुत पुराना है। साक्षरता हमारे आंदोलन में बहुत महत्त्वपूर्ण जगह रखती है क्योंकि साक्षरता का मतलब केवल पढ़ना-लिखना नहीं है। साक्षरता का मतलब दुनिया के बारे में सोचने-समझने की क्षमता रखना है और दुनिया के बारे में सोच-समझ की क्षमता रखने के लिए दो अलग-अलग चीज़ें हमें चाहिए जो मेरे चेचक के उदाहरण से साफ़ हैं। एक बात, हमें सोचने की स्वतंत्रता रखनी चाहिए। हमारी दादियां और नानियां जो चेचक के उपचार में अपना अनुभव बताती थीं, वे एक दूसरे से बात करती थीं। बराबरी के नाते से बात करती थीं, यूं नहीं बात करती थीं कि एक कोई महाराज की दादी है और उनकी बात सब सुनती हैं। सारी सहेलियां बैठकर अपने गांव, अपने घरों के बारे में बात करती थीं। ऐसे ही मुझे भी यहां सबके साथ बैठकर बात करना वैज्ञानिक लगता है। दूसरी बात, जब हम एक दूसरे को अपने निरीक्षण और अनुभव बताते हैं तो दो चीज़ें सामने आती हैं - पहली, एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए; और दूसरी, इतना भी विश्वास नहीं करना चाहिए कि बगैर परख के अपना ली जाए। बल्कि उसे परखो, उसका निरीक्षण करो, अनुभव करो, फिर सोच-समझकर सांझे अनुभवों के साथ अपनी वैज्ञानिक सोच बना लो। इससे ज़्यादा सामाजिक सांझेपन का दूसरा उदाहरण नहीं है। इसलिए वैज्ञानिकता इंसानियत की असली विरासत है। हमारी इंसानियत हमारी वैज्ञानिकता में है कि एक दूसरे का आदर करें एक दूसरे की सुनें। मेरे हिसाब से यह आंदोलन के लिए भी विचार करने लायक है। हम कहते हैं कि सबकी सुननी चाहिए, बड़ों की सुननी चाहिए और इसके साथ ही छोटों की भी सुननी चाहिए और उसी भावना के साथ सुननी चाहिए, उतने ही आदर के साथ सुननी चाहिए। इसका मतलब है कि बोलने का मौका भी मिलना चाहिए। मैं आपसे सवाल करता हूं (क्योंकि आप इस बैठक में शिरकत कर रहे हैं) - क्या हम आंदोलन के भीतर सबकी सुनते हैं? (और बात करते हुए हरियाणा में तो ताऊ कहना ज़रूरी है) इसलिए कहता हूं कि आज दुनिया के शीर्ष ताऊ हैं डोनाल्ड ट्रंप। उनकी बात करूंगा तो कहूंगा कि पिछले सवा साल से जब से ताऊजी सत्ता में आए हैं उन्होंने अमेरिकी समाज, अमेरिकी विज्ञान, अमेरिकी अंतर्देशीय नीतियों का नक्शा बदल दिया है। उन्हें लेकर पहला मुद्दा तो यह है कि वे कहते हैं कि हम उपेक्षित वर्ग की सुनते हैं। उपेक्षित वर्ग हमसे कहते हैं कि हमें टीकों से नफ़रत है, इसलिए अमेरिकी सरकार टीकों को लेकर बहुत ज़्यादा पीछे हटी हुई है। बच्चों को टीके देने की नीतियां अमेरिकी सरकार ने कम कर दी हैं। दूसरी बात अमेरिकी सरकार में एक अंदरूनी जंग छिड़ी हुई है। उनकी अंदरूनी जंग **डी ई आई** के खिलाफ़ है। डी का मतलब डाइवर्सिटी, यानी विविधता; ई का मतलब इक्विटी, यानी समता; और आई का मतलब इंक्लूसिवनेस, मतलब सबको शामिल करके चलना। इन

वैज्ञानिकता इंसानियत की असली विरासत है। हमारी इंसानियत हमारी वैज्ञानिकता में है कि एक दूसरे का आदर करें एक दूसरे की सुनें। मेरे हिसाब से यह आंदोलन के लिए भी विचार करने लायक है। हम कहते हैं कि सबकी सुननी चाहिए, बड़ों की सुननी चाहिए और इसके साथ ही छोटों की भी सुननी चाहिए और उसी भावना के साथ सुननी चाहिए, उतने ही आदर के साथ सुननी चाहिए। इसका मतलब है कि बोलने का मौका भी मिलना चाहिए।

सबको ताऊजी ने सरकार में आते ही खारिज कर दिया। क्यों कर दिया? इसलिए किया कि अगर सबकी सुनी तो जो सच में समझ रखने वाले दिव्य बुद्धि के इंसान हैं, उनकी बात सुननी पड़ेगी। विश्व ताऊ, यानी ट्रंप, ने यह समझ अपना रखी है। दूसरी ओर, हम यह मानते हैं विविधता में इंसाफ़ की, इंसानी इंसाफ़ की बात है कि हम सब एक जैसे नहीं होते। ज़ाहिर है कि अगर हम सबने इकट्ठा होकर आगे बढ़ना है तो एक दूसरे की विविधता का सम्मान करना होगा, एक दूसरे की गरिमा का सम्मान करना होगा। मतलब किसी तरीके से सब को चलने देना होगा। बड़े छोटों को चलने दें। समाज के हर तबके को चलना होगा। अमेरिका में तो अजीब-सी सोच को बढ़ावा दिया जा रहा है।

मैं अपने कार्यक्षेत्र प्रतिरक्षा विज्ञान के अनुभव से आपके सामने एक और बात रखता हूं। जब यूरोप से क्रिस्टोफ़र कोलंबस जैसे लोग अमेरिका पहुंचे तो वहां पर भी इंसान थे जिन्हें पहले रेड् इंडियन कहा जाता था, आजकल अमेरिकंस कहा जाता है। अमेरिकन खंड की बहुत बड़ी आबादी ऐसी थी। जैसे ही बाहरी लोग वहां पहुंचे, बड़े पैमाने पर महामारियां फैलने लगीं, संक्रामक बीमारियां फैलने लगीं और फिर मौतें हुईं क्योंकि संक्रामक बीमारियां यूरोप से अमेरिका पहुंचीं। अब पूछने वाला सवाल यह है कि यूरोपीय लोग नहीं मरे और अमेरिकी लोग क्यों मारे गए। तो यही बात एक दूसरे तरीके से सामने आती है कि बिल्कुल छोटे-छोटे इंसानी समूह जो आदिवासी इलाकों में रहते थे उनमें आपस में वैवाहिक रिश्ते होते हैं तो जैविक विविधता कम होती जाती है, परस्पर रिश्तेदारियां बहुत ज़्यादा बढ़ती हैं। तो इस रिश्तेदारी के बढ़ने के और जैविक विविधता कम होने के असर क्या हैं ? महामारी के समय अगर सब एक जैसी जैविक विविधता रखने वाले लोग हों तो सभी पर एक साथ एक-सा ही असर पड़ता है, यानी पूरे इंसानी समूह के नष्ट होने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। आपके शरीर में उपस्थित जैविक विविधता ही आपकी प्रतिरक्षा व्यवस्था काम करती है। अगर जैविक विविधता नहीं होती तो प्रतिरक्षा व्यवस्था काम ही नहीं करती। तो **जैविक विविधता का मूल्य सैद्धांतिक नहीं है कि मूल्य व्यवस्था कहती है इसलिए विविधता का सम्मान करो। विविधता का सम्मान इसलिए भी करना चाहिए कि वह इंसानी इंसाफ़ की बात करती है और इसलिए भी करना चाहिए कि अलग-अलग नज़रों से, अलग-अलग जगह से, अलग-अलग अनुभवों से हमारा निरीक्षण या सांझा अनुभव ज़्यादा समृद्ध होता जाता है। उसमें से जो सैद्धांतिक नतीजे निकलते हैं, वे ज़्यादा विश्वसनीय होते हैं। वे सारे समाज के लिए, सारे लोगों के कल्याण के लिए ज़्यादा लाभकारी होते हैं।** मैं एक बार फिर यह ज़िक्र करूंगा कि यह जो विविधता का मुद्दा है, यह नहीं है कि हां, सब ठीक कहते हैं, विविधता बहुत अच्छी चीज़ है। **हमें यह सोचना होगा - आंदोलन के अंदर क्या हम युवाओं की सुनते हैं; क्या हम महिलाओं की सुनते हैं; क्या हम बाकी उपेक्षित तबकों की सुनते हैं; क्या हमसे हमारा शीर्ष नेतृत्व उभर रहा है या आने वाले वर्षों में ऊपर आएगा; इसके लिए हम क्या करते हैं? यह भी सोचने की बात है।** मैं आपसे गुज़ारिश करता हूं कि ऐसे थोड़े विचलित करने वाले मुद्दों पर भी आप लोग सोचें।

(प्रस्तुति : मनीषा, राज्य कोषाध्यक्ष;
लिप्यंतरण : अनिता बागोटिया, राज्य कार्यकारिणी सदस्य)

कविताएँ

पुरुष

- टेकचंद

एक लंबी बहस के बाद
पति ने
स्वीकार कर लिया
स्त्री व पुरुष के
अधिकार व दायित्व
समान होने चाहिए
और फिर
आराम कुर्सी पर
अधलेटे पुरुष ने
हुक्म दिया
कि बस बहुत हुआ
अब ज़रा
एक कप
चाय तो बना कर लाओ

ये किया हमने

-हरभगवान चावला

हमने स्त्रियों की पूजा की
और लहूलुहान कर दिया
हमने नदियों की पूजा की
और ज़हर घोल दिया
हमने गायों की पूजा की
और पेट में कचरा उड़ेल दिया
हमने ईश्वर की पूजा की
उसके कत्ल के लिए हमने
नायाब तरीका चुना
हमने एक ईश्वर के
कई ईश्वर बनाए
और सबको आपस में लड़ा दिया।

ज़रूरी है बहुलतावाद

अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क की महासचिव सुश्री आशा मिश्र द्वारा राज्य सम्मेलन में दिए गए वक्तव्य के मुख्य अंश

आज यहां 15 ज़िलों से 200 से ज़्यादा प्रतिभागी आए हुए हैं और 12 ज़िलों में आपने सम्मेलन किया है। पिछले सम्मेलन से बढ़ोत्तरी हुई है। आप लोग गंभीरता से रिपोर्ट पर चर्चा कर रहे हैं। बाकी राज्यों के साथ तुलना करें तो हरियाणा में एक स्तर पर सैद्धांतिक समझ बन चुकी है। मुझे दो बातें बहुत अच्छी लगती हैं – लोकतंत्र और विकेंद्रीकरण। इनका अर्थ बहुत खूबसूरत है। अगर किसी संगठन में लोकतंत्र होता है, विकेंद्रीकरण होता है तो वह संगठन और भी अधिक खूबसूरत बन जाता है। लेकिन आज यह चुनौती बन चुकी है। अब हमें यह देखना है कि क्या हर स्तर पर यह लोकतंत्र है। तो उसमें मेरा एक सुझाव है। हम पीपल्स साइंस मूवमेंट हैं, *वी हैव टू क्रिएट ए क्रिटिकल मास।* यह तब होगा जब हम *क्रिटिसिज़्म* को अपने जीवन में उतारेंगे। हम केवल दूसरों को नहीं बोल सकते कि आप *क्रिटिकल* बनें बल्कि इतना धैर्य मुझ में भी होना चाहिए कि कोई मुझे भी *क्रिटिसाइज़* कर सके। यही जन विज्ञान नेटवर्क की *कोर स्पिरिट* है। यही विज्ञान है। और जब यह होगा तब बहुत अच्छा समाज बनेगा। आज आप कह रहे हैं कि हम 2000 लोगों तक पहुंचें। जब 2000 लोगों में ऐसा *क्रिटिकल अवेयरनेस* होगा तो हमें बहुत खुशी होगी। मेरा दूसरा सुझाव है कि हम गांव, ब्लॉक, ज़िला स्तर तक अपनी इकाइयां बनाएं। हम जो कार्यक्रम करते हैं, उन्हें निचले स्तर तक (दलित, आदिवासी, महिला, अल्पसंख्यक जो प्रतिदिन संघर्ष कर रहे हैं, उनके बीच) लेकर जाना होगा। विज्ञान आंदोलन को उनके बीच तक लेकर जाएं। आपके पास लोग और संसाधन हैं। आप दूसरे राज्यों को भी सहयोग कर सकते हैं। तीसरी बात हम पिछले 5 सालों से नई शिक्षा नीति पर बात कर रहे हैं। जो बच्चे मजबूरी में स्कूल छोड़ रहे हैं, वे बच्चे स्कूल छोड़कर कहां गए? वे बच्चे होटल में काम कर रहे हैं, घरों में काम कर रहे हैं। सरकार को इस बात से कोई दिक्कत नहीं है। हरियाणा के हालात आपके सामने हैं। आपके यहां कितने स्कूल बंद हो गए हैं। हम इस देश के नागरिक हैं। हम अलग समझ के साथ चलते हैं। इसलिए हमारी ज़िम्मेदारी बनती है कि उन बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करें। एक तरह से हमें सरकार के साथ लड़ना है और बच्चों के लिए संस्थाएं, लर्निंग सेंटर बनाने हैं। आपने अपने राज्य में बना रखे हैं, उन्हें और फैलाएं। **पानीपत की चौथी लड़ाई** आपकी उपलब्धि है। इसलिए आपको सतत् शिक्षा के लिए संस्थाएं खोलनी हैं। इन संस्थानों में बच्चे आते हैं, उनके माता-पिता आते हैं, जनप्रतिनिधि मिलता है। इसलिए आप पुस्तकालय खोलिए।

आज राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो हाहाकर मचा हुआ है, उससे निचले स्तर वाला तबका परेशान है। उसके पास अनेक समस्याएं हैं, उसका आधार कार्ड नहीं बन पा रहा है, उसको काम नहीं मिल पा रहा है, खेती नहीं हो पा रही है, पीने का पानी नहीं मिल पा रहा है। लेकिन सरकार की योजनाओं में विकास हो रहा है। अगर हम उनके साथ खड़े हों तो उन्हें लगेगा कि अभी भी हमारा समाज ज़िन्दा है, हमारा हिंदुस्तान ज़िन्दा है। इसलिए मुझे लगता है कि शिक्षा पर, उच्च शिक्षा पर, प्रौढ़ शिक्षा पर जितना असर पड़ रहा है, उसके लिए योजनाएं बनाइए। आपने पहले भी किया है। कुछ महीने पहले सरकार ने सर्कुलर निकाला था कि सरकारी स्कूल में पढ़ोगे तो 600 रुपये देना पड़ेगा और अगर प्राइवेट स्कूल में पढ़ोगे तो 600 रुपये सरकार आपको देगी। स्पष्ट है कि सरकार निजीकरण कर रही है।

इन सब मुद्दों को उठाने के लिए हमें युवाओं को संगठन में लाना है, उन्हें नेतृत्व में लाना है। यह तब होगा जब हम नीचे तक जाएंगे। हम समझना चाहते हैं कि बहुलतावादी संस्कृति में हमारा संगठन कहां है।

(प्रस्तुति : मनीषा; लिप्यंतरण : अनिता बागोटिया)

नागरिक शिक्षा के हमारे कार्यभार

भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. काशीनाथ चटर्जी द्वारा सम्मेलन में दिए गए वक्तव्य के मुख्य अंश

आज 23 राज्यों में लगभग 350 ज़िलों में भारत ज्ञान–विज्ञान समिति का संगठन है। हमारे संगठन की चुनौती यह है कि आज जो यह वैचारिक बातचीत हो रही है, इसे हम नीचे, यानी गांव में कैसे लेकर जाएं। हमने अलीगढ़ विश्वविद्यालय के साथ मिलकर नागरिक शिक्षा की योजना बनाई है। झारखंड में हम इसे लागू कर रहे हैं। हमारे किसी एक गांव में जब हम एक से डेढ़ हज़ार लोगों का सम्मेलन करेंगे, वहां नागरिक शिक्षा केंद्र बनाने के लिए पूरी बात रखेंगे उसके लिए हम हरियाणा के साथियों को पहले से आमंत्रित करके जा रहे हैं कि आप आइए और देखें कि एक गरीब राज्य झारखंड कैसे नागरिक शिक्षा का कार्य कर रहा है। जर्मनी के बाद खनिज पदार्थ में समृद्ध अगर कोई है तो वह झारखंड है। लेकिन वहां सबसे ज़्यादा लूट है। जब झारखंड अलग हो रहा था बहुत से प्रगतिशील लोग कह रहे थे कि राज्य अलग नहीं होना चाहिए तो कॉमरेड ए.के. रॉय (जिनके साथ हम काम कर रहे थे, वह तीन बार सांसद हुए, तीन बार विधायक हुए) ने जिस झारखंड की बात की थी, वह झारखंड तो नहीं बन सका लेकिन यह लूटखंड बन गया है। वहां इतनी गरीबी है कि बहुत सारे लोगों को खाना नहीं मिलता। चावल अगर आप लोगों को देंगे तो चावल और थोड़ी–सी सब्ज़ी, बस इतने भर में लोग संतुष्ट हो जाएंगे। ऐसे झारखंड के लिए हमने तय किया कि पहले गांव में हम नागरिक शिक्षा केंद्र खोलेंगे और उसमें दो स्वयंसेवी होंगे। भारत ज्ञान–विज्ञान समिति ने यह तय किया है कि नागरिक शिक्षा कमेटी हर गांव में चुनकर आएगी। साथ ही हम कृषि मंच, युवा मंच, मज़दूर मंच का निर्माण करेंगे। ज्ञान–विज्ञान समिति, हरियाणा ने तो पहले ही तय कर लिया था कि हम प्रोजेक्ट नहीं लेंगे। यह गैर–परियोजनात्मक काम है, यह आंदोलन का काम है जो आप कर रहे हैं। आपके पास विचारवान लोग हैं। आप नागरिक शिक्षा केंद्र का निर्माण करते हैं, उसकी कमेटी का निर्माण करते हैं। उसमें कृषि मंच, युवा मंच, किशोरी मंच बनाते हैं, दो व्यक्तियों को चुनते हैं और वे इसे संचालित करते हैं तो आपको बहुत बढ़त मिल सकती है। इसमें चार बिंदुओं पर हम काम कर रहे हैं। पहला है – चर्चा मंडल। चर्चा मंडल क्यों? आप देखिए कि हमारे पास दो मंच हैं – एक अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क और दूसरा है भारत ज्ञान–विज्ञान समिति। दोनों मंचों को अगर गांवों में उतरना है और विचारों से संघर्ष करना है तो हर गांव में आपको नागरिक शिक्षा केंद्र बनाना पड़ेगा जो **मानने** नहीं, **जानने** वाले सिद्धांत पर आधारित होगा। वे मानने के लिए कह रहे हैं और लोग उनके पीछे भाग रहे हैं। हमारा भी तो कोई नागरिक शिक्षा केंद्र या चर्चा मंडल होना चाहिए जहां हम स्वास्थ्य पर बात करें, जहां हम शिक्षा पर बात करें। झारखंड में 1947 में जो स्कूल खुला था वह बंद हो गया है तो हमने पेपर में इसके बारे में लिखा और उसके बाद हम शिक्षा मंत्री के पास गए। हमारे शिक्षा मंत्री मैट्रिक पास थे लेकिन थे बहुत अच्छे आदमी। उन्होंने स्कूल मर्जर को बंद किया। पूरे देश में एकमात्र झारखंड ऐसा राज्य था जहां नए स्कूल खुले और पुराने स्कूल मर्ज न करने का निर्णय हुआ। नागरिक शिक्षा केंद्र में जागरूकता और सामूहिकता ही हमारी ताकत है। केंद्र में स्वास्थ्य, शिक्षा, खेत–खलिहान, कल्याण – सभी चीज़ों पर चर्चा करने के लिए चर्चा मंडल एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

नागरिक शिक्षा केन्द्र में पुस्तक वाचन एवं चर्चा कार्य ज़रूरी है। हरियाणा ज्ञान–विज्ञान समिति पुस्तक प्रकाशन एवं वितरण में सफल है। जो विकसित देश है, वह किताब की तरफ़ भाग रहा है और हम कंप्यूटर और मोबाइल की तरफ़ भाग रहे हैं। तो नागरिक शिक्षा केंद्र पुस्तकालय स्थापित करने का दूसरा केंद्र होगा। पहला चर्चा मंडल, दूसरा पुस्तकालय, तीसरा हमारा सबसे बड़ा काम जो हमारी पहचान रहा है, वह है साक्षरता अभियान। आज भी देश में 34 करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं। गरीब बच्चों के पास मोबाइल नहीं हैं तो बच्चे ऑनलाइन एजुकेशन कैसे लेंगे? तो इसका मतलब यह है कि हमें हमारे यहां पुस्तकालय, चर्चा मंडल, कृषि मंच, युवा मंच, किशोरी मंच बनाने हैं और सब लोगों को इनसे जोड़ना है। हमारे झारखंड में तो बहुत संघर्ष है। ज़्यादातर लोग काम के लिए दूसरे राज्यों में जाते हैं लेकिन वह भी लौटकर आ रहे हैं। जब हम मनरेगा में 100 दिन काम की बात कर रहे हैं तो लोग अपने गांव में ही काम के अधिकार के लिए संघर्ष में हमारे साथ आ रहे हैं। यही समझ देश के अन्य राज्यों में ले जाने की बात अलीगढ़ विश्वविद्यालय

में दो दिवसीय कार्यशाला में हुई थी। उसके बाद हमने पहले राज्य यूपी में कुशीनगर में कार्यशाला की जहां हरियाणा से प्रमोद जी और मनीषा जी दोनों रिसोर्स पर्सन के तौर पर गए थे। हम लोग हरियाणा में 100 पंचायतों में नागरिक शिक्षा केंद्र खोलेंगे। अगर हम पंचायत में केंद्र स्थापित करते हैं तो वह नागरिक शिक्षा आंदोलन का केंद्र बनेगा क्योंकि एक पंचायत से सभी चीज़ें फैल जाती हैं। वह केन्द्र फैलेगा और आगे बढ़ेगा और ढंग से हम अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाएंगे। दो तरह के समूहों का मेल होना चाहिए – एक बुज़ुर्गों का, जो रास्ता दिखलाए; दूसरा, नौजवानों का, जो काम को आगे लेकर जाए। दोनों आपके पास हैं। तीसरा आपके पास ज्ञान–विज्ञान आंदोलन के तीन संगठन हैं – एक, जन संगठन; दूसरा, भारत ज्ञान–विज्ञान समिति जो **क्वालिटी एजुकेशन** पर काम करती है; और तीसरा, वैज्ञानिक जागरूकता के लिए विज्ञान मंच। तो यह तीनों अगर मिलकर काम करें तो अभी हम ढाई हज़ार लोगों तक पहुंचे हैं, अगले राज्य सम्मेलन तक हमें एक लाख लोगों तक हरियाणा में जाना है।

हम जानते हैं कि इस तरह का विज्ञान आंदोलन, यानी विचारों का आंदोलन, अभी देश में नहीं है। राजा राम मोहन राय, ज्योतिबा फुले, ईश्वर चंद्र विद्यासागर – इन लोगों ने समाज सुधार किए हैं। लेकिन आज वही काम ज्ञान–विज्ञान समिति को करना होगा क्योंकि अंधविश्वास फैलाया जा रहा है। मैं 10 दिन धार्मिक जगह पर रहा। घूमना शुरू किया साधुओं के बीच, महात्माओं के बीच, मंदिरों में समझने की कोशिश की। अगर वहां 4000 साधु हैं तो उनमें से 3000 अपराधी हैं। वे सब बचने के लिए वहां गए हैं। उनके पीछे हज़ारों भक्त हैं और हमारे मन में सवाल उठता है कि हम इतना अच्छा काम कर रहे हैं, हमारे साथ थोड़े आदमी क्यों हैं। इस बारे में सोचने पर हमको लगता है कि जो विचारवान लोग होते हैं वह बहुत कम होते हैं। भगत सिंह अकेले थे, सूर्यसेन अकेले थे। सूर्यसेन के एक पोते हमारे साथ झारखंड में जुड़े हुए हैं। हम समझते हैं आज के समाज में आप बहुत आगे आए हैं। आपके पास भी वह सब है। नागरिक शिक्षा केंद्र स्थापित कीजिए। यह एक लंबी लड़ाई है और इस लड़ाई को चेतना के साथ लड़ना होगा। तभी हम एक दिशा दे सकते हैं। अगर हम साक्षरता में दिशा दे सकते हैं तो नागरिक शिक्षा केंद्र बनाकर भी दे सकते हैं। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में जब हम कार्यशाला कर रहे थे, तब सभी प्रोफ़ेसर हमारे पास आए, बोले कि दो लाख हमारी तनख्वाह है लेकिन हम लोग इस तरह से नहीं सोचते हैं, जिस तरह से आप लोग सोचते हैं। हम भी कम से कम 10 पंचायतों में व अलीगढ़ विश्वविद्यालय में ऐसा करेंगे। इस तरह के विश्वविद्यालयों तक पहुंच बनाकर नौजवानों के बीच बात करना और नागरिक शिक्षा केंद्र स्थापित करना ज़रूरी है। आने वाले समय में हम राष्ट्रीय स्तर पर भी बड़े कार्यक्रम करेंगे। हम आपको इस सम्मेलन में यही कहेंगे कि नागरिक शिक्षा केंद्र मज़बूत करो, पंचायत को मज़बूत करो और नौजवानों को धीरे–धीरे नेतृत्व में लाओ। हम समझते हैं कि इसमें हरियाणा ज्ञान–विज्ञान समिति पूरे देश को एक दिशा देगी। **पानीपत की चौथी लड़ाई** ने हमें साक्षरता आंदोलन में आकर्षित किया था। उसी तरह से करनाल के इस राज्य सम्मेलन के 3 साल बाद अगला सम्मेलन करेंगे तो एक तरफ़ विचारवान लोग होंगे और दूसरी तरफ़ नौजवान होंगे। दोनों मिलकर अपनी बात रखेंगे और एक नया बदलाव लाएंगे।

(प्रस्तुति : प्रमोद गौरी; लिप्यंतरण : अनिता बागोटिया)

> **अगर हम पंचायत में केंद्र स्थापित करते हैं तो वह नागरिक शिक्षा आंदोलन का केंद्र बनेगा क्योंकि एक पंचायत से सभी चीज़ें फैल जाती हैं। वह केन्द्र फैलेगा और आगे बढ़ेगा और ढंग से हम अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाएंगे। दो तरह के समूहों का मेल होना चाहिए – एक बुज़ुर्गों का, जो रास्ता दिखलाए; दूसरा, नौजवानों का, जो काम को आगे लेकर जाए।**

मैं लिखूंगा

–सिद्दीक अहमद मेव

मैं प्रेमी हूं,अंतिम जन का।
सच्चा सिपाही,अपने वतन का।।
कागज़, कलम, दवात उठाकर।
सच्चा हाल लिखूंगा मन का।।
जुल्म–ज़्यादती, पीड़ित मन का।
कपड़े नहीं जिस पर, उस तन का।।
पतझड़ में फूटी कोंपल का।
बसंत में प्रफुल्लित मन का।।
अन्याय–अत्याचार, अगन का।
नफ़रती शब्द और ज़हन का।।
क्रांति–परिवर्तन और लड़ाई,
समाज–सुधार के जतन का।।

दुनिया की सबसे शानदार औरत खूबसूरत चीज़ों को न ही देखा जा सकता है और न ही छुआ जा सकता है। उन्हें तो बस दिल से महसूस किया जा सकता है।

- हेलेन केलर
(27 जून 1880 - 1 जून 1968)

विचारशील नागरिक और जनतंत्र

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के राज्य अध्यक्ष प्रमोद गौरी द्वारा राज्य सम्मेलन के समापन के अवसर पर दिया गया वक्तव्य

साथियो, 26 घंटे की बहस हमारे बीच हुई है और अधिकतम हाज़िरी 163 की रही है। 163 प्रतिभागी, 26 घंटे बिना किसी प्रकार की सुस्ती, अलगाव या बोरियत के बैठे रहे। बहुत उम्दा किस्म की भागीदारी देखने को मिली है। यहां कोई सोशल मीडिया नहीं था, यहां फ़ोन नहीं बज रहे थे। अगर कुछ हो रहा था सोशल मीडिया के माध्यम से तो केवल फ़ोटोग्राफ़्स लिये जा रहे थे, वे भी शायद इस भावना से लिये गए कि हम सभी भविष्य के लिए इस सम्मेलन को अपने जीवन का हिस्सा बनना चाहते हैं। नागरिक शिक्षा केंद्र खोलने की बात हमारे बीच डॉ. काशीनाथ चटर्जी जी ने रखी। नागरिक शिक्षा केंद्र का सवाल हमारे बीच में बहुत पहले से है। हमारे आंदोलन के बुद्धिजीवी साथियों के दिमाग में सवाल है कि यहां से जो कहा जा रहा है, वह गांव में कैसे उतरेगा। यह हम सबके लिए बड़ा प्रश्न है, इसका समाधान हम करेंगे।

इस संदर्भ में ही मैं डॉक्टर भीमराव अंबेडकर की बात आपके बीच लाना चाहता हूं। उन्होंने शायद 4 नवंबर 1948 को संविधान सभा में एक भाषण दिया जिसमें वह कह रहे हैं कि हमारे गांव जहालत के अड्डे हैं। यह बात 1948 में भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कही जो सामाजिक परिवर्तन के द्वारा नागरिक समाज बनाने की कल्पना कर रहे थे। उन्होंने गांव को यह दर्जा दिया। उनके अंदर गांव में परिवर्तन करने की इच्छा इतनी गहरी थी कि वह साफ़ कहना चाहते थे कि हमारे ये गांव दलितों के लिए तो बूचड़खाने हैं। वह आज़ादी के आंदोलन के सबसे शिक्षित व्यक्ति थे। जिस प्रकार के परिवेश से उठकर वह आगे बढ़े, दुनिया को उन्होंने जिस तरह से देखा और समझा, उसी आधार पर उन्होंने परिवर्तन का संकल्प धारण किया। उस संघर्षशील व्यक्ति ने यह बात कही कि हमारी चुनौती कितनी बड़ी है।

1950 में जो चुनौती थी, आज वैसी नहीं है। आज गांव बदल चुके हैं और समाज में परिवर्तन आ चुका है। लेकिन यह बात भी हमें नहीं भूलनी चाहिए कि आज गांवों और शहरों में जो वातावरण है, वह किसी भी तरह से विचारशील संस्कृति को आत्मसात् नहीं करता। यह संविधान सभा के सदस्यों का, राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं का सपना था कि लोकतंत्र गांव के अंदर से जाना चाहिए। हम अपने ग्रामीण जीवन को परिवर्तित करने के लिए नागरिक की हैसियत से, सही दिशा लेकर नागरिक कर्त्तव्य करते हुए संघर्ष के लिए उतरें। देश वही बनता है जहां हर नागरिक सचेत और विचारशील है, वह किसी न किसी प्रकार से हस्तक्षेप करता है। काफ़ी युवा साथी पहली बार हमारे सम्मेलन में आए लेकिन जिस प्रकार से उन्होंने अपने विचार और आलोचनातमक समीक्षा हमारे बीच रखी और आगे के लिए बहुत शानदार सुझाव दिए तो एक उम्मीद जागती है कि वह सपना जो संविधान के माध्यम से 1950 में देखा गया, युवा पीढ़ी आज भी उसे समझती है।

साथियो, सपना देखना बहुत ज़रूरी काम है। ये स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं के सपने ही थे जिन्होंने देश को आज़ाद करवाया क्योंकि पहले सपने लिये जाते हैं, फिर संघर्ष करते हुए अपनी कुर्बानियां दी जाती हैं। हमारा ऐसा गौरवशाली इतिहास है। अगर ज्ञान–विज्ञान आंदोलन इस इतिहास को आत्मसात् करके धारण करने की या उसे आगे ले जाने की कोशिश करता है तो हम आने वाले समय में एक दूसरे को यह सारा काम याद दिलवाएंगे। सम्मेलन में जो इतनी अच्छी बहस हुई है, उसे हम किसी भी तरह से बिखरने नहीं देंगे, ऐसी उम्मीद है। मैं अपनी बात 20वीं शताब्दी के चिली के बहुत महान कवि पाब्लो नेरुदा की पंक्तियों से समाप्त करना चाहूंगा। वह कह रहे हैं –

मैं चाहता हूं मिट्टी
आग
रोटी
शक्कर
गेहूं
समुन्दर
किताबें
और
ज़मीन
सभी मनुष्यों के लिए

उन्होंने अपने पूरे जीवन को वंचितों की नज़र से देखा। उन्होंने इन पंक्तियों में वंचितों के लिए कितना महान विचार पेश किया है। आपने ज्ञान–विज्ञान आंदोलन के विचारों के साथ जो सांगठनिक दृष्टि, गंभीर शिरकत और प्रतिबद्धता प्रस्तुत की है, इतनी गंभीरता से जो बहस की है, वह आंदोलन के लिए प्रेरणादायी है। इस समय प्रतिगामी ताकतें समाज को पीछे की ओर धकेल रही हैं और आपने लगातार उसके प्रति चिंताएं और संवेदनशीलता प्रस्तुत की हैं, उसी से यह विश्वास मज़बूत होता है कि आने वाले समय में हम मिलकर काम करेंगे और ज्ञान–विज्ञान आंदोलन को आगे बढ़ाएंगे।

(प्रस्तुति : मनीषा; लिप्यंतरण : अनिता बागोटिया)

रपट

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति का 11वां राज्य सम्मेलन

– सुरेश कुमार

हरियाणा ज्ञान–विज्ञान समिति का 11वां राज्य प्रतिनिधि सम्मेलन करनाल के सेक्टर 8 स्थित महाराणा प्रताप भवन में 11 अप्रैल से 13 अप्रैल 2026 तक भारी जोश एवं उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में देश और समाज की उन्नति के लिए सामाजिक न्याय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित एक सभ्य नागरिक समाज बनाने का आह्वान किया गया ताकि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि मूलभूत आवश्यकताओं और सामाजिक न्याय तक आम आदमी की पहुंच हो सके। सम्मेलन में आगामी तीन वर्षों के लिए 23 सदस्यीय परामर्श कमेटी और 31 सदस्यीय राज्य कार्यकारिणी का गठन किया गया। प्रो. प्रमोद गौरी को अध्यक्ष; सोहनदास एवं नंदकिशोर को उपाध्यक्ष; सुरेश कुमार को राज्य महासचिव; मनीषा को कोषाध्यक्ष; वेदपाल को सहसचिव; तथा शीतल, रामफल मलिक एवं सुरेश गिरधर को सचिवमंडल सदस्य की ज़िम्मेदारी सौंपी गई। इनके अलावा नरेश प्रेरणा, राममेहर, शीशपाल, डॉ. बलजीत भ्याण, वज़ीर सिंह, अमृतलाल, प्रमोद कुमार, नरेश कुमार, लाभ सिंह हुड्डा, कृष्ण मलिक, कृष्ण वत्स, अनिता बगोटिया, संदीप महिया, विनोद मंगलोरा, बबीता, सतीश शेखपुरा, ललित सोलंकी एवं प्रवीण को राज्य कार्यकारिणी सदस्य; तथा डॉ. सन्तोष मुदगिल एवं डॉ. सुरेन्द्र कुमार को स्थाई आमंत्रित सदस्य चुना गया।

खुला सत्र :

सम्मेलन की शुरुआत 11 अप्रैल को खुले सत्र के साथ हुई जिसमें 165 डेलीगेट्स एवं ऑब्ज़र्वर्स समेत करीब 600 कार्यकर्ताओं एवं हमदर्दों ने भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता भूतपूर्व आईएएस श्री बलबीर सिंह मलिक ने की। उनके साथ मंच पर अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं मुख्य वक्ता डॉ. सत्यजीत रथ, महासचिव आशा मिश्र, भारत ज्ञान–विज्ञान समिति के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. काशीनाथ चटर्जी, हरियाणा ज्ञान–विज्ञान समिति के राज्याध्यक्ष प्रोफ़ेसर प्रमोद गौरी एवं भूतपूर्व आईएएस श्री लाजवीर सिंह भी उपस्थित रहे। मंच संचालन सचिवमंडल सदस्या मनीषा एवं राज्य सचिव सुरेश कुमार द्वारा किया गया। खुले सत्र की शुरुआत समिति एवं जतन नाट्य केन्द्र की सांस्कृतिक टीम द्वारा 'अमन के हम रखवाले, सब एक हैं' गीत के साथ की गई। इसके बाद स्वागत समिति के अध्यक्ष प्रो. विनोद भूषण अबरोल द्वारा 1990 के दशक में चले साक्षरता आंदोलन से अब तक के सफ़र पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए सभी उपस्थित अतिथियों, प्रतिनिधियों, ऑब्ज़र्वर्स एवं वॉलंटियर्स का हार्दिक स्वागत किया गया।

खुले सत्र में अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. सत्यजीत रथ ने मुख्य वक्तव्य रखते हुए बेहद आम भाषा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बात रखी। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक चेतना के बिना किसी भी आविष्कार की खोज एवं विकास की सम्भावना नहीं है। अंधविश्वास एवं पाखंड के खिलाफ़ लड़ना किसी की आस्था पर हमला नहीं है बल्कि वैज्ञानिक दृष्टि का फैलाव करना है। सोच की स्वतंत्रता बेहद ज़रूरी है। हम सब अपने दैनिक जीवन में वैज्ञानिक समझ का उपयोग करते हैं। इसे हम हज़ारों वर्षों से विरासत के तौर पर प्रयोग कर रहे हैं। इसलिए वैज्ञानिक सोच को छोड़ना हमारे हित में नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमारे नीति निर्माताओं द्वारा पिछले 30–40 सालों के दौरान सार्वजनिक संस्थाओं को कमज़ोर करके निजी संस्थाओं को मज़बूत किया गया है जो वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने की बजाय अंधविश्वास, पाखंड, रूढ़िवाद आदि

को बढ़ावा देती हैं और कुछ ही सम्पन्न लोगों के हित में ही काम करती हैं।

इस मौके पर हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति एवं जतन नाट्य केन्द्र के कलाकारों ने ज्योतिबा फुले के संघर्षों को समर्पित तथा शिक्षा के महत्त्व और सामाजिक न्याय की ज़रूरत को रेखांकित करता हुआ नाटक 'हमारा नया स्कूल' प्रस्तुत किया। नाटक में ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले एवं फ़ातिमा शेख द्वारा लड़कियों की शिक्षा और विधवा महिलाओं की दयनीय स्थिति को बदलने के लिए किए गए प्रयासों को और वर्तमान हालात में शिक्षा के सार्वजनिक ढांचे की दुर्दशा को दर्शाया गया था। साथ ही समिति द्वारा सार्वजनिक शिक्षा को बचाने के लिए किए जा रहे संघर्षों और ग्राम पंचायतों की भूमिका को भी दर्शाया गया है।

इस मौके पर अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क की राष्ट्रीय महासचिव आशा मिश्र ने अपने सम्बोधन में कहा कि हमारे देश में जहां एक तरफ़ धर्म, जाति, लिंग, क्षेत्र आदि के आधार पर बांटने की पुरज़ोर कोशिशें जारी हैं; वहीं ज्ञान-विज्ञान आंदोलन इन चुनौतियों को स्वीकार करते हुए लगातार वैचारिक संघर्ष कर रहा है। यह आंदोलन विकल्प देकर नीतियों को बदलवाने का काम करता है। उन्होंने रूस-यूक्रेन युद्ध अमेरिका-इज़राइल-ईरान युद्ध को लेकर भारी चिंता जताई जिसमें भारी तादाद में बच्चों समेत लाखों लोग मारे जा चुके हैं। उन्होंने ऐसे जनविरोधी युद्धों पर तुरंत रोक लगाने की मांग करते हुए कहा कि युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकते बल्कि वे खुद एक समस्या हैं। इसलिए हमें युद्ध नहीं शांति चाहिए। उन्होंने अखिल भारतीय जनविज्ञान नेटवर्क द्वारा चलाए जाने वाले 'भविष्य का भारत' अभियान में बढ़-चढ़कर भागीदारी सुनिश्चित करने की अपील की। इस अभियान में 'जो है उससे बेहतर चाहिए' के नारे के साथ सामाजिक न्याय, बराबरी और वैज्ञानिक चेतना का विकास जैसे मुद्दों को लेकर लोगों के साथ गहरा वैचारिक विमर्श किया जाएगा।

भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. काशीनाथ चटर्जी ने कहा कि भारत ज्ञान-विज्ञान समिति द्वारा 1990 के दशक में शुरू किए गए साक्षरता अभियानों से अब तक हरियाणा में वैज्ञानिक जागरूकता के अनेकानेक प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन आज हम बहुत ही विपरीत परिस्थितियों में यह राज्य सम्मेलन कर रहे हैं। एक तरफ़ अनेकता में एकता एवं साझी संस्कृति हमारे देश की खूबसूरती हैं, वहीं दूसरी ओर नीति-निर्माताओं द्वारा विविधता और वैज्ञानिक जागरूकता के खिलाफ़ बहुत गहरे षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। अंधविश्वास, रूढ़िवाद, पाखंड को बढ़ावा दिया जा रहा है। हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के प्रदेशाध्यक्ष प्रमोद गौरी ने कहा कि समिति गत करीब 35 सालों से वैज्ञानिक दृष्टि एवं सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को लेकर काम कर रही है। साक्षरता अभियानों में सबसे ज़्यादा महिलाओं, युवा लड़के-लड़कियों और वंचित तबकों ने भागीदारी की थी। इन तबकों ने पहचान और अभिव्यक्ति की आज़ादी के साथ सामाजिक न्याय को हासिल करने के लिए लगातार संघर्ष किए हैं, जो आज भी जारी हैं। समिति अंधविश्वास एवं गैरबराबरी को दूर कर समतामूलक समाज के निर्माण में सहयोग के लिए प्रयासरत है। लेकिन नीति-निर्माताओं द्वारा प्रदेश में पिछले कुछ सालों में 5400 से ज़्यादा सरकारी स्कूलों का बन्द करना इनके जनविरोधी स्वरूप को दिखाता है। इससे जहां एक तरफ़, बजट घटाकर गरीब एवं वंचित तबकों से शिक्षा हासिल कर आगे बढ़ने के तमाम अवसरों को छीना जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ़, गऊशालाओं का बजट पिछले 14 वर्षों में 2 करोड़ से बढ़ाकर 600 करोड़ रुपये तक कर दिया गया है।

इस अवसर पर हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित 'स्मारिका-2026'; 'वैज्ञानिक मानसिकता और हमारा जीवन' तथा हरियाणा लेखक संघ द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'विवेकानंद के विचार' का विमोचन किया गया। करनाल के ज़िलाध्यक्ष विनोद मंगलोरा ने खुले सत्र के समापन के मौके पर राज्य-भर से आए मेहमानों, प्रतिनिधियों, ऑब्ज़र्वर्स एवं वॉलंटियर्स आदि का धन्यवाद किया। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता कर रहे श्री बलवीर सिंह मलिक ने कहा कि वर्तमान दौर बहुत ही संकटपूर्ण है। साम्प्रदायिक, जातिवादी और नफ़रती ताकतों द्वारा समाज का

बंटवारा करने की कोशिशें लगातार की जा रही हैं जो बेहद खतरनाक हैं। ऐसे में हमें मानवीय, संवेदनशील चेतना की ज़रूरत है। ज्ञान-विज्ञान आंदोलन ही समाज को सही दिशा प्रदान कर सकता है। उन्होंने लोगों से इस आंदोलन से जुड़ने का आह्वान किया।

प्रतिनिधि सत्र

दोपहर बाद प्रतिनिधि सत्र की शुरुआत गत तीन वर्षों के दौरान हमारे बीच नहीं रहे साथियों को श्रद्धांजलि देने के साथ की गई। इसके बाद राज्य कार्यकारिणी की ओर से राज्याध्यक्ष एवं राज्य सचिव द्वारा गत तीन वर्षों में किए गए कार्यक्रमों, गतिविधियों और अभियानों की संक्षिप्त रिपोर्ट रखी गई। वैश्विक, राष्ट्रीय और राज्य की परिस्थितियों सहित मौजूदा परिदृश्य तथा सांगठनिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए गए। पिछले 3 सालों में देश और दुनिया में हो रहे बहुत सारे बदलावों का ज़िक्र किया गया। जनतंत्र पर बढ़ते खतरों को विशेष तौर पर रेखांकित किया गया। सांगठनिक रिपोर्ट में बताया गया कि गत सम्मेलन के दौरान गठित 28 सदस्यीय राज्य कार्यकरिणी की हर दो माह में और सचिवमंडल की हर माह बैठकें आयोजित की गईं। बैठकों में लगातार किए जा रहे कामों की समीक्षा और भविष्य की योजनाओं को अमली जामा पहनाने के प्रयास किए गए। यह सम्मेलन 12 ज़िलों के सम्मेलन करके गठित की गई कमेटियों के आधार पर किया जा रहा है जबकि पिछले सम्मेलन में केवल 7 ज़िलों में ही कमेटियों का गठन किया जा सका था। गत तीन वर्षों के दौरान हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से जुड़े हर मुद्दे पर गम्भीर विमर्श कर ठोस पहल करने के लिए 10 कोर समूहों को लगातार सक्रिय रखने का भी प्रयास किया गया। ये कोर समूह थे - विज्ञान कोर, बुलेटिन कोर, शिक्षा कोर, युवा कोर, समता कोर, दलित कोर, अल्पसंख्यक कोर, कृषि कोर, स्वास्थ्य कोर, सांस्कृतिक कोर। राष्ट्रीय स्तर के सभी कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भागीदारी की गई। अगस्त 2024 में उत्तर भारत की कार्यशाला का महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक में आयोजन किया गया जिसमें चार राज्यों से करीब 60 कार्यकर्ताओं ने भागीदारी की। राज्य कोषाध्यक्ष नन्दकिशोर ने गत 3 वर्षों की वित्तीय रिपोर्ट पेश की।

प्रस्तावित रिपोर्ट पर सभी प्रतिनिधियों ने 9 समूहों में बैठकर करीब 4 घंटे तक गम्भीर बहस की। समूह चर्चा के बाद प्रस्तावित रिपोर्ट पर प्रतिनिधियों ने बहुमूल्य सवालों, सुझावों और प्रतिक्रियाओं को मंच पर रखा जिससे रिपोर्ट को और भी समृद्ध करने में मदद मिली। राज्य नेतृत्व द्वारा सभी सवालों पर बात की गई और महत्त्वपूर्ण सुझावों एवं बिन्दुओं को रिपोर्ट में शामिल करने का भरोसा दिलाते हुए रिपोर्ट को सर्वसम्मति से पारित करवाया गया। सम्मेलन के दौरान *नई शिक्षा नीति-2020* के खिलाफ़, सामाजिक न्याय के पक्ष में और युद्धों के विरोध में तीन महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित किए गए। सम्मेलन के दूसरे दिन की शाम को जनवादी लेखक संघ, हरियाणा के तत्त्वावधान में काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें राज्य भर से आए 25 कवियों ने हिंदी और हरियाणवी में अपनी रचनाओं की शानदार प्रस्तुति दी। सम्मेलन के दौरान संगठन के संविधान के ड्राफ़्ट को भी मंजूरी दी गई।

समापन सत्र में हिमाचल ज्ञान-विज्ञान समिति के राज्य महासचिव सत्यवान पुंडीर और समता की राष्ट्रीय संयोजिका सुमित्रा चन्देल ने सफल सम्मेलन के लिए शुभकामनाएं दीं। भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के राष्ट्रीय महासचिव ओमप्रकाश भुरैटा ने हर इकाई में नागरिक शिक्षा केन्द्र खोलने का आह्वान किया जहां बैठकर आम लोग अपने अनुभवों को सांझा कर अवैज्ञानिकता के खिलाफ़ योजना बना सकें। सम्मेलन में 14 ज़िलों एवं 12 सहयोगी संगठनों से 165 डेलीगेट्स और ऑब्ज़र्वर्स (125 पुरुष एवं 40 महिलाएं) ने भाग लिया। इस मौके पर बेहतरीन व्यवस्था के लिए राज्य कार्यकारिणी की ओर से वॉलंटियर्स को सम्मानित किया गया। करनाल ज़िला के अध्यक्ष विनोद मंगलोरा द्वारा सभी मेहमानों, प्रतिनिधियों, वॉलंटियर्स और सहयोगियों के हार्दिक धन्यवाद के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

(सुरेश कुमार हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के राज्य सचिव हैं।)

राज्य सम्मेलन के प्रतिभागियों की बुनतर

– वेदप्रिय

किसी संस्था के प्रतिनिधियों द्वारा परिचय-पत्रों के माध्यम से दी गई जानकारी उस संस्था की सेहत का प्रतिबिंब होती है। यह भी महत्त्वपूर्ण होता है कि इन परिचय-पत्रों के माध्यम से किन प्रश्नों को समझने का प्रयास किया गया है। सटीक प्रश्न ही ठीक जानकारी दे सकते हैं (वह भी पूर्ण नहीं)। यह एक प्रकार का सर्वेक्षण है। यहां हमारे सामने हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति के करनाल अधिवेशन (11-13 अप्रैल 2026) के अवसर पर एकत्र की गई जानकारी का एक साधारण अवलोकन है। यह अवलोकन समिति की कुल ताकत के चयनित प्रतिनिधियों का है। यहां सैंपल साइज़ 125 परिचय-पत्र हैं। सम्मेलन में उपस्थित कुछ प्रतिनिधियों की जानकारी उपलब्ध भी नहीं है (वह भी प्रभावपूर्ण हो सकती थी)।

यहां महिलाओं का प्रतिनिधित्व लगभग 27-28 प्रतिशत (कुल संख्या 33) है। इसमें 30 वर्ष तक की युवा लड़कियों की संख्या 10 है, 60 वर्ष से ऊपर केवल 1, जबकि 60 वर्ष से ऊपर पुरुषों की संख्या 24 है। इसका एक अर्थ तो यही निकलता है की बड़ी उम्र के पुरुषों की समिति में काम करने की निरंतरता अपेक्षाकृत ज़्यादा है। इसके कुछ समाजशास्त्रीय पक्ष हो सकते हैं। इसमें उन महिलाओं का योगदान भी है जो मापन में नहीं आया, जिनके पारिवारिक सहयोग की बदौलत ये पुरुष आगे निकल पाए हैं। इसका भी अध्ययन चाहिए। सेवानिवृत्त प्रतिनिधि संख्या में सर्वाधिक (36 प्रतिनिधि) हैं। समिति के लिए उनके अनुभव का क्षेत्र और समय का मिलना एक उपलब्धि है। दूसरी बड़ी संख्या नौकरीपेशा साथियों की है। ये ताज़ा हालातों से समिति को अवगत रखते हैं। एक बड़ा वर्ग अध्यापकों का है। समिति का वर्तमान स्वरूप साक्षरता अभियानों से निकला है। औपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा का विमर्श यहां है। अधिकांश (43 प्रतिनिधियों) की रुचि शिक्षा क्षेत्र में है। यह इस ओर इशारा है कि इस दिशा में कुछ और ज़्यादा की दरकार है।

समिति की बड़ी उपलब्धि है कि यहां पोस्ट ग्रैजुएट्स की संख्या 52 है, पीएचडी कर चुके लोगों की संख्या 6 है। यह बुद्धिजीवी पक्ष अत्यधिक मज़बूत है। उनकी योग्यताओं का लाभ उठाना समिति का एजेंडा बनना चाहिए। यहां लगभग 90 प्रतिशत साथी सोशल मीडिया का प्रयोग कर रहे हैं। संख्या की दृष्टि से यह आंकड़ा बड़ा नहीं मानना चाहिए। आज तो प्राय: हर बच्चे के हाथ में यह टूल उपलब्ध है। यही आज के दिन हमारे व्यक्तित्व-निर्माण में अहम भूमिका निभा रहा है। यहां तक कि एक नई प्रकार की संस्कृति आकार ले रही है। इस बड़ी शक्ति का संज्ञान लेना बनता है अन्यथा हमारे हाथ से ग्राउंड निकला जा रहा है। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों की सेवाएं चाहिए। एक पल की देरी भी बड़ी देरी है। हमें हर आयु-वर्ग के अनुरूप और रुचि अनुसार कार्यक्रम डिज़ाइन करने चाहिए। मेरा व्यक्तिगत मानना (विज्ञान कोर के गत 3 वर्ष के अनुभव पर आधारित) है कि यह ताकत आने वाले समय में समिति को संगठित करने में सहायक रहेगी।

समिति से जुड़े कुछ साथी (8 से 10 तक) विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों से जुड़े रहे हैं (कुछ के परिचय-पत्र दिखाई नहीं दिए)। उनके माध्यम और प्रभाव से समिति अपना कार्य-क्षेत्र ऐसी समस्याओं तक बढ़ा सकती है। यह क्षेत्र अपेक्षाकृत सिकुड़ा ही रहा है। जहां तक बुलेटिन पढ़ने की बात है, यह चिंताजनक है कि नियमित पाठकों की संख्या केवल 41 है और अनियमित पाठक 66 हैं, अन्य भी हैं। यह ज़िला कमेटियों के माध्यम से आए चयनित प्रतिनिधियों की बात है, बाकी समिति के सदस्यों को तो छोड़ ही दें। इस पर चिंतन अनिवार्य है।

(सभी प्रश्नों पर टिप्पणियां न करते हुए) एक प्रश्न था – संगठन को बेहतर बनाने हेतु आपके सुझाव। शब्द 'बेहतर' स्वयं में कई आयाम लिए है, मसलन किस किस्म की बेहतरी – आर्थिक, सांगठनिक, बौद्धिक या कुछ और। इस पर क्या कहूं! 17 साथियों ने यह कॉलम खाली छोड़ा है। इस बारे में क्या कहें कि उनके पास कहने को क्या कुछ था या नहीं! 89 साथियों ने सामान्य औपचारिक सुझाव दिए हैं। केवल 12 साथियों ने कुछ ठोस कहना चाहा है। उन्हें और सुना जाना चाहिए। स्थानाभाव में शायद वे पूरा न कह पाए हों।

साथी पढ़ने में कितना समय लगाते हैं, इस प्रश्न पर अधिकांश साथी कम गंभीर नज़र आए। सभी परिचय-पत्रों में बारीकी से तलाशने पर भी मुझे किन्हीं भी 10 अच्छी पुस्तकों (स्तरीय) के नाम नहीं मिले जो हाल ही में साथियों ने पढ़ी हों। यह एक विचारणीय समस्या है।

(सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य वेदप्रिय जी ज्ञान-विज्ञान आंदोलन के वरिष्ठ साथी हैं।)

स्मृति शेष

रघु राय

– वी. बी. अबरोल

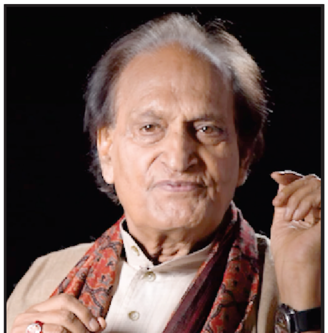

18 दिसंबर 1942 - 26 अप्रैल 2026

1943 में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। लाखों लोग मारे गए। कहा जाता है कि अकाल पीड़ितों को राहत देने के लिए जो रसद भेजी जा रही थी, इंग्लैंड के प्रधानमंत्री चर्चिल ने बंगाल में अकाल की विभीषिका को भली भांति जानते हुए भी उस सामग्री का मुंह लड़ाई के मोर्चे की ओर मोड़ दिया जहां बर्तानवी फ़ौज लड़ रही थी। जंग की वजह से दुनिया का ध्यान बंगाल की ओर जा ही नहीं रहा था। ऐसे में भारतीय फ़ोटो पत्रकार सुनील जना ने अपने चित्रों द्वारा मानव द्वारा निर्मित भीषण मानवीय त्रासदी की ओर दुनिया की नज़र मोड़ी। 41 साल बाद एक बार फिर देश को ऐसी ही भयंकर, मानव द्वारा निर्मित त्रासदी का सामना करना पड़ा। भोपाल में अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी यूनियन कार्बाइड के कारखाने का कार्यकाल खत्म हो चुका था। कायदे से कारखाने में काम बंद कर ताला लगा दिया जाना चाहिए था पर ऐसा हुआ नहीं। कारखाना बदस्तूर चल रहा था कि 1984 की एक रात को अचानक अपना कार्यकाल पूरा कर चुकी मशीनों से ज़हरीली गैस का रिसाव होने लगा। गैस हवा से भारी होने के कारण तेज़ी से ज़मीन पर रेंग रही थी। कुछ ही मिनटों में, इससे पहले कि नींद में डूबे लोग समझ पाएं कि क्या हो रहा है, हज़ारों लोग और जानवर मौत की नींद सो गए।

1984 कोई 1943 नहीं था। दूरसंचार के साधनों का बंगाल के अकाल के समय के मुकाबले कहीं अधिक विकास हो चुका था। सुबह होने से पहले ही खबर दिल्ली के अखबारों के दफ़्तरों में पहुंच चुकी थी। पत्रकारों और फ़ोटो पत्रकारों की एक टोली हवाई जहाज़ द्वारा भोपाल पहुंच गई यद्यपि उनको ठीक से यह पता नहीं था कि आखिर हुआ क्या है और उनको करना क्या होगा। सड़कों पर निर्जीव स्त्री-पुरुष-बच्चों, पशुओं के फूले हुए शरीर बिखरे हुए थे। 'ब्रेकिंग न्यूज़' का युग शुरू हो रहा था और सबसे पहले खबर देने वाला बनने के लिए होड़ लगी हुई थी। पत्रकार और फ़ोटो पत्रकार मुर्दों को श्मशान/कब्रिस्तान की ओर ले जाते लोगों पर गिद्ध की तरह टूट पड़ रहे थे। इस होड़ में मानवीय संवेदना के लिए कोई जगह नहीं थी। एक चिता पर चार-चार लोग एक साथ जलाए जा रहे थे। एक ही कब्र में एक के ऊपर एक, एक साथ तीन-तीन लोगों को सुपुर्दे-खाक किया जा रहा था। ऐसे में साप्ताहिक समाचार पत्रिका 'इंडिया टुडे' के फ़ोटो एडिटर रघु राय ने एक ऐसा चित्र खींचा जिसे देखकर सारा देश अंदर तक हिल गया। एक बच्चे को अंतिम बार मिट्टी से ढकने से पहले एक हाथ उसकी खुली आंखों वाले चेहरे को प्यार से सहला रहा था। फटाफट बटन दबाते कैमरों ने उस दिन लाखों तस्वीरें खींची होंगी। उनमें से हज़ारों बहुत मार्मिक भी होंगी। पर मानवीय संवेदना से ओतप्रोत इस एक चित्र ने आज 40 साल से अधिक बीत जाने के बाद भी भोपाल गैस त्रासदी की भयंकर विभीषिका को पूरी तरह स्मृति लोप हो जाने से रोक रखा है।

26 अप्रैल 2026 को पिछले दो-तीन साल से प्रोस्टेट कैंसर से जूझ रहे रघु राय इस दुनिया से रुखसत हो गए। वह न देश के पहले फ़ोटो पत्रकार थे, न अंतिम होंगे। बल्कि टी.वी. और सोशल मीडिया के युग में आजकल समाचार शब्दों से कम, चित्रों द्वारा अधिक लोगों तक पहुंच रहे हैं। फिर रघु राय में ऐसा क्या था कि उनके विदा हो जाने के बाद से आज तक सोशल मीडिया देश के अलग-अलग स्थानों पर उनको श्रद्धांजलि देने के लिए आयोजित कार्यक्रमों की रिपोर्टों से छाया रहता है!

अपने देश में फ़ोटो पत्रकारों की पहली प्राथमिकता शुरू से राजनीतिक व्यक्तित्व और घटनाएं रहे हैं। पॉलिटिकल इवेंट्स की रिपोर्टिंग प्रमुखता से होती है। इसके बाद नंबर आता है धर्म गुरुओं का। लंबे समय तक दलाई लामा और मदर टेरेसा राजनेताओं के बाद फ़ोटो पत्रकारों की पहली पसंद रहे, फिर क्रिकेट के कुछ खिलाड़ी, कुछ बड़े संगीतकार आदि-आदि। ऐसा नहीं कि रघु राय को इन लोगों से कोई परहेज़ था। उन्होंने अपने समय की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं को खूब कवर किया। दलाई लामा और मदर टेरेसा से वह बहुत प्रभावित थे, उनके बहुत निकट भी रहे और उन पर एल्बम भी बनाए। संगीत के शौकीन थे और संगीतकारों के कई दुर्लभ चित्र उन्होंने खींचे। पर जिस विशेषता ने उनको भारत में फ़ोटो पत्रकारिता का शिखर व्यक्तित्व बनाया, वह थी उनकी भोपाल गैस त्रासदी वाले चित्रों में प्रकट होने वाली मानवीय संवेदना। आम आदमी की ज़िंदगी की त्रासदीय घटनाएं और छोटी-छोटी खुशियां उनकी फ़ोटो पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण अंग थीं। शायद कम ही लोग जानते होंगे कि रघु राय द्वारा खींचा गया पहला फ़ोटो एक गधे के बछेड़े का था। वह सिविल इंजीनियरिंग में डिग्री लेकर अपने से 12-13 साल बड़े अपने भाई शरमपाल चौधरी (जो एस. पॉल के नाम से मशहूर हुए) के पास दिल्ली गए हुए थे। पॉल पहले 'द स्टेट्समैन' और फिर 27 साल तक 'इंडियन एक्सप्रेस' के चीफ़ फ़ोटोग्राफ़र थे। एक दिन रघु बड़े भाई के मित्र योग जॉय के साथ रोहतक की सैर पर निकल गए। योग जॉय जो बाद में 'द ट्रिब्यून' अखबार के चीफ़ फ़ोटोग्राफर बन गए, भी रोहतक

के रहने वाले थे और दलाई लामा के पसंदीदा फ़ोटो जर्नलिस्ट थे। जाते हुए रघु राय भाई साहब से पूछकर कैमरा भी ले गए। एक जगह उन्हें एक गधे का बच्छेड़ा दिखाई दिया। वह उसका फ़ोटो खींचने लगे तो गधा भाग गया। काफ़ी देर तक वह उसका पीछा करते रहे। आखिर में गधा थककर खड़ा हो गया तो रघु ने फटाक से बटन दबा दिया। जब पॉल ने यह फ़ोटो देखा तो उन्हें बहुत पसंद आया। उन्होंने फ़ोटो को लंदन के 'द टाइम्स' अखबार में भेज दिया जहां वह आधे पेज पर रघु के नाम के साथ छपा और उस समय के हिसाब से अच्छे-खासे पैसे भी मिले। यह शायद 1966 की बात है। इसके बाद रघु ने इंजीनियरिंग छोड़कर भाई की तरह फ़ोटो जर्नलिस्ट बनने का फ़ैसला कर लिया। भाई ने उनको कैमरों के बारे में तकनीकी जानकारी दी और पत्रकारिता के कुछ गुर सिखाए। कुछ ही समय में तो वह उस समय के दिग्गज फ़ोटो पत्रकारों (भाई एस. पॉल और 'हिंदुस्तान टाइम्स' के किशोर पारेख) के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर टक्कर लेने लगे। यहां कंधे से कंधा भिड़ाना एक मुहावरा मात्र नहीं है। फ़ोटोग्राफ़ी में आप जिसका चित्र खींच रहे हैं, उसके जितना नज़दीक होंगे, चित्र उतना ही बढ़िया आएगा। इसलिए नज़दीक पहुंचने के लिए सचमुच कंधे भिड़ाने पड़ते थे।

रघु राय के बड़े भाई एस. पॉल कुछ अंतर्मुखी स्वभाव के थे। काम की बात सिर्फ़ कैमरे से करते थे। उनके बारे में किस्सा है कि उनके अखबार ने उन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के चित्र खींचने के लिए भेजा। पॉल प्रधानमंत्री निवास पर पहुंचे तो मोरारजी भाई कुछ लोगों से बात कर रहे थे। वह जहां खड़े थे, वहां धूप ठीक से नहीं आ रही थी। पॉल ने उनसे थोड़ा सा जगह बदलने को कहा तो मोरारजी भाई ने मना कर दिया। इस पर पॉल तस्वीर खींचे बिना ही आ गए।

पॉल के विपरीत रघु राय अधिक हंसमुख और मिलनसार थे। सबसे निकटता बना लेते थे। उनका भी एक किस्सा है। वह इंदिरा गांधी पर एल्बम बना रहे थे। इंदिरा गांधी जब शिमला वार्ता के लिए गईं तो रघु भी अपने अखबार की ओर से बातचीत को 'कवर' कर रहे थे। उन्होंने प्रधानमंत्री से कहा कि आप अपने को 'हिमालय की पुत्री' कहती हैं। क्यों न पहाड़ों की पृष्ठभूमि में आपका फ़ोटो लिया जाए? इंदिरा गांधी ने अगली सुबह का समय दे दिया। अगली सुबह जब रघु राय पहुंचे तो प्रधानमंत्री लॉन की बाउंड्री वॉल के साथ चक्कर लगा रही थीं। रघु ने अलग-अलग कोणों से देखा पर बात कुछ बन नहीं रही थी। आधा शरीर दीवार से ऊपर, आधा नीचे। इंदिरा जी ने पूछा कि कुछ गड़बड़ है क्या। इस पर उन्होंने कहा कि दीवार के कारण बात नहीं बन रही। क्या आप इस पर चढ़ सकती हैं? फिर पूरा चित्र आ जाएगा। वह मान गईं। कुर्सी लाकर उस पर कदम रखकर वह दीवार पर चढ़ गईं और रघु राय ने पहाड़ों की पृष्ठभूमि में चित्र ले लिया जो इंदिरा गांधी के बेहतरीन चित्रों में माना जाता है। दो प्रधानमंत्री, उनके फ़ोटो खींचने वाले दो फ़ोटोग्राफ़र जो दोनों सगे भाई पर नतीजा एकदम उलट। रघु राय कहते थे कि उन्होंने इंदिरा गांधी को कभी मैडम या प्रधानमंत्री नहीं कहा। बस कह देते थे, 'देखिए न इंदिरा जी!' और काम बन जाता था।

देश के विभाजन के बाद रघु राय का परिवार सीमा के उस पार रह गए झंग से आकर रोहतक में आबाद हुआ था। शायद एक मलिक साहब उनके बहनोई थे जिनकी डी पार्क की टक्कर में मॉडल टाउन में चाय की दुकान थी। बांग्लादेश युद्ध की कवरेज के बाद रघु राय की एक राष्ट्रीय पहचान बन चुकी थी। मैंने दो-तीन बार उनको मलिक साहब की दुकान पर या मॉडल टाउन में घूमते देखा। वह आम तौर पर सामने से खुला, पिंडलियों तक की लंबाई वाला लबादा पहनते थे। यह एक फ़ैशन भी हो सकता है और गर्दन में लटके कैमरे को ढकने की युक्ति भी हो सकती है। मॉडल टाउन में हमारे एक मित्र थे जिनका नाम तो शादीलाल था पर वह केश और दाढ़ी रखकर सिख बन चुके थे और अपना नाम सुरिंदर सिंह रख लिया था। एक शाम सुरिंदर सिंह, जाट कॉलेज के प्रोफ़ेसर एस. सी. गांधी, मैं और कुछ अन्य मित्र मॉडल टाउन में घूम रहे थे कि अचानक पीछे से किसी ने सुरिंदर सिंह के कंधे पर हाथ मारते हुए कहा - 'होर भाई शादी शाह, की हाल-चाल हैं तेरे?' मुड़कर देखा तो रघु राय थे। यह घटना मैं इसलिए लिख रहा हूं कि राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर लेने के बाद भी वे ज़मीन से जुड़े थे। उनकी इसी खासियत ने उनको दूसरों से अलग फ़ोटो पत्रकारिता का शिखर व्यक्तित्व बना दिया।

रघु राय ने एक इंटरव्यू में कहा कि यद्यपि पत्रकारिता आज बहुत बदल गई है, फिर भी ज़िम्मेदार पत्रकारिता को इतिहास का पहला ड्राफ़्ट माना जाता है। यदि ऐसा है तो फ़ोटो पत्रकारिता उस जिए जा रहे इतिहास का दिखाई देने वाला पहला प्रमाण है। पत्रकार तो फिर भी उसने जो कुछ देखा है, उसके बारे में लिखते समय उसमें फेर-बदल कर सकता है पर फ़ोटो पत्रकार ने तो जो क्लिक कर लिया, सो कर लिया। वह नहीं बदला जा सकता। फ़ोटो पत्रकार अपने सामाजिक वातावरण से रूबरू हो रहा होता है। उसका काम ठोस होता है। उसमें अमूर्त कुछ नहीं होता। दैनिक अखबारों में छपने वाले फ़ोटो का जीवन एक दिन का होता है। अगला दिन, नई फ़ोटो। रघु राय 10 वर्ष से अधिक 'इंडिया टुडे' से जुड़े थे जो साप्ताहिक समाचार पत्रिका थी। यहां छपे फ़ोटो एक सप्ताह तक जीवित रहते थे। पर रघु राय ने आम आदमी के जीवन से जुड़े ऐसे फ़ोटो दिए जिनमें से बहुत से आज 40 साल से अधिक बीत जाने के बाद भी ज़िंदा हैं, प्रासंगिक हैं। वह बंगाल के अकाल के बाद की सबसे बड़ी विभीषिका भोपाल गैस त्रासदी के सुनील जना थे।

(सेवानिवृत्त अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर डॉ. वी. बी. अबरोल 50 से भी अधिक वर्षों से प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े हुए हैं।)

प्राचीन भारतीय ज्ञान-प्रणाली और गौतम बुद्ध

- सुरेंद्र कुमार

आजकल भारतीय समाज में प्राचीन (सनातन) सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना के यत्न किए जा रहे हैं। कहा जा रहा है कि अपनी सांस्कृतिक विरासत को नज़रंदाज़ करके नेहरू की धर्मनिरपेक्षता और पाश्चात्य समाजवाद पर आधारित विकास प्रक्रिया से राष्ट्र पथभ्रष्ट हो गया है। प्राचीन संस्कृति आधारित विकास प्रक्रिया को अपनाने का दावा किया जा रहा है। इसलिए भाववादी, यानी पुरातन आध्यात्मिक-सांस्कृतिक समझ के आधार पर राष्ट्र के पुनर्गठन के यत्न किए जा रहे हैं और शायद भौतिकवादी चिंतन परम्परा को अनदेखा किया जा रहा है। इस प्रक्रिया को समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करने की आवश्यकता है।

प्राचीन भारतीय चिंतन और ज्ञान परम्परा में भाववादी (आदर्शवादी/अध्यात्मवादी चिंतन पर आधारित) और पदार्थवादी (सांसारिक वस्तुओं पर आधारित समझ) दोनों चिंतन परम्पराएं विकसित हुईं। वैदिक काल में अध्यात्मवाद का वर्चस्व था और उसके पश्चात् गौतम बुद्ध के काल में पदार्थवादी चिंतन का सुव्यवस्थित ढंग से विकास हुआ। इन विचारधाराओं में लम्बे समय तक संघर्ष रहा और उनका समकालीन धार्मिक-सामाजिक सोच और जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस लेख में हम गौतम बुद्ध के चिंतन के सभी मुख्य पक्षों का परीक्षण करेंगे।

प्राचीन भारतीय चिंतन और ज्ञान परम्परा में भाववादी (आदर्शवादी/अध्यात्मवादी चिंतन पर आधारित) और पदार्थवादी (सांसारिक वस्तुओं पर आधारित समझ) दोनों चिंतन परम्पराएं विकसित हुईं। वैदिक काल में अध्यात्मवाद का वर्चस्व था और उसके पश्चात् गौतम बुद्ध के काल में पदार्थवादी चिंतन का सुव्यवस्थित ढंग से विकास हुआ। इन विचारधाराओं में लम्बे समय तक संघर्ष रहा और उनका समकालीन धार्मिक-सामाजिक सोच और जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

गौतम बुद्ध से पहले के काल (लगभग 500 ईसा पूर्व तक) में वर्ण-आधारित सामाजिक व्यवस्था का आधिपत्य था एवं वैचारिक स्तर पर वैदिक विचारधारा का वर्चस्व था जिसके मुख्य अवयव थे - ईश्वर की प्रभुसत्ता, आत्मा-परमात्मा, कर्मफल और कर्म के आधार पर पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक और वेद-प्रमाण आदि। उस काल में आध्यात्मिक और भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए यज्ञ और जीव बलि (हिंसा) की स्वीकार्यता थी। वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान सबसे उच्च था और उसके बाद क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का स्थान था और शूद्रों की स्थिति सबसे नीची थी। धीरे-धीरे शूद्रों के प्रति छुआछूत की परम्परा भी शुरू हो गई थी।

बुद्ध ने जातिवाद एवं आत्मा-परमात्मा, कर्मफल, वेद-प्रमाण और यज्ञ आदि कर्मकांडों का सीधा और कारगर विरोध किया। यह उस काल की एक बहुत बड़ी वैचारिक क्रांति थी। बौद्ध विचार क्रांति ने वेद लगभग डुबा दिए थे। वेदों की प्रामाणिकता भी खासी संदिग्ध हो गई थी। बौद्ध धर्म का प्रमुख वैचारिक अभियान तीन बातों पर केंद्रित था - वेद-प्रमाण की अस्वीकृति, यज्ञों को भौतिक जगत की सुख-सुविधाओं का संरक्षक विचार बनाए जाने का विरोध और व्यक्ति या ब्राह्मण की श्रेष्ठता का खंडन।

बुद्ध ने जन्म-आधारित वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करने से इंकार कर दिया और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने बलि प्रथा का विरोध किया और अहिंसा के रास्ते की वकालत की। वैदिक/सनातन दर्शन की आत्मा-परमात्मा, नरक-स्वर्ग, परलोक और पुनर्जन्म की अवधारणाओं को स्वीकार नहीं किया और पांचों इंद्रियों और मन/चेतना की संवेदनाओं से प्राप्त ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान माना।

गौतम बुद्ध का दर्शन, मनुष्य के अनुभव और अनुभूति जनित ज्ञान (न कि आध्यात्मिक साधना और आस्था/अलौकिक ज्ञान) के आधार पर अपनी सोच विकसित करने पर ज़ोर देता है। दिमाग के अंदर परिवर्तन करने के लिए बुद्ध मन को बदलने का सिद्धांत 'प्रतीत्य समुत्पाद' प्रतिपादित करते हैं। दु:ख और कष्ट का कारण मन के अंदर की तृष्णा, लालच, घृणा को मानते हैं और शील, समाधि और प्रज्ञा के नियमों के पालन से इन वृत्तियों को वश में किया जा सकता है। बुद्ध दिमाग के अंदर के परिवर्तन से मनुष्य के अंदर परिवर्तन की प्रकल्पना करते हैं। यही मनुष्य का जीवन जीने के नियम हैं। बुद्ध राजसत्ता और अर्थव्यवस्था जनित शोषण को दु:खों-कष्टों का कारण नहीं मानते। यह बुद्ध के चिंतन की सबसे बड़ी कमज़ोरी प्रतीत होती है।

बुद्ध के चिंतन के मुख्य अवयव/अवधारणाएं

गौतम बुद्ध का दर्शन/चिंतन आगे वर्णित अवधारणाओं पर आधारित है। कुछ अवधारणाएं पहले की दार्शनिक परंपराओं से अपनाई गई हैं और कुछ का उन्होंने स्वयं विकास किया है। बुद्ध ने ये अवधारणाएं कई वर्ष की साधना/प्रयोगों द्वारा अपने अनुभव/अनुभूतिओं से अर्जित ज्ञान के आधार पर प्रतिपादित की हैं जिनमें से मुख्य संकल्पनाएं निम्नलिखित हैं :

● बुद्ध की एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अवधारणा थी कि प्रकृति किसी दैवीय शक्ति द्वारा संचालित नहीं है बल्कि अपने नियमों के अनुसार चलती है और इन नियमों को जाना और समझा जा सकता है। इन नियमों का उपयोग करके हम भौतिक ब्रह्मांड और मन/चित्त/चेतना की कार्यप्रणाली को समझ सकते हैं और उनका अपने और अपने समाज के हित में उपयोग कर सकते हैं।

बुद्ध का तर्क था कि किसी कथन/बात को आस्था के आधार पर स्वीकार मत करें। जब तक आप का मन, प्रयोग (experiment) और अनुभवजन्य साक्ष्य (empirical evidence) के द्वारा किसी कथन की सत्यता से संतुष्ट न हो जाए, उसे स्वीकार मत करें।

गौतम बुद्ध ने यह अवधारणा प्रतिस्थापित की कि दुनिया का सारा ज्ञान हम 'केवल' अपनी पांच ज्ञानेंद्रियों (आंखें, नाक, कान, जीभ और त्वचा) पर होने वाली संवेदनाओं से ही प्राप्त कर सकते हैं, न कि अपने मन की कोरी कल्पनाओं (जिनका इस दुनिया में कोई आधार न हो) से। बुद्ध ने 'मन/चित्त' को भी एक ज्ञान इंद्री की संज्ञा दी। इन इंद्रियों से प्राप्त ज्ञान ही दुनिया का सत्य (धर्म) है, यानी धारण करने योग्य है। यह उस समय की एक क्रांतिकारी अवधारणा थी क्योंकि यह उस काल की वैदिक चिंतन प्रणाली पर सीधा प्रहार था।

● गौतम बुद्ध ने यह अवधारणा प्रतिस्थापित की कि दुनिया का सारा ज्ञान हम 'केवल' अपनी पांच ज्ञानेंद्रियों (आंखें, नाक, कान, जीभ और त्वचा) पर होने वाली संवेदनाओं से ही प्राप्त कर सकते हैं, न कि अपने मन की कोरी कल्पनाओं (जिनका इस दुनिया में कोई आधार न हो) से। बुद्ध ने 'मन/चित्त' को भी एक ज्ञान इंद्री की संज्ञा दी। इन इंद्रियों से प्राप्त ज्ञान ही दुनिया का सत्य (धर्म) है, यानी धारण करने योग्य है। यह उस समय की एक क्रांतिकारी अवधारणा थी क्योंकि यह उस काल की वैदिक चिंतन प्रणाली पर सीधा प्रहार था।

● बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद (पत्यच्चासमुप्पद/Law of Dependent Origination) के नियम की प्रतिस्थापना की। इस नियम के अनुसार ब्रह्मांड और समाज में जो कुछ भी घटित होता है, उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कारण के बिना कुछ भी घटित नहीं हो सकता, यानी जो कुछ घटित होता है, उसके निहित कारणों का परिणाम है। ब्रह्मांड को संचालित करने वाले कारकों और उनके परिणामस्वरूप प्रभावों की लम्बी शृंखला है। जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह किसी न किसी कारण से उत्पन्न होता है, जब भी उन कारणों का उन्मूलन हो जाता है तो उनके परिणामी 'प्रभाव' नहीं रह सकते, नष्ट हो जाते हैं। कारण और प्रभावों में सम्बंध वर्तमान विज्ञान का एक मूलभूत नियम है जिसका उपयोग वैज्ञानिक मानसिकता के विकास और दुनिया की सभी प्रक्रियाओं की व्याख्या करने और उनके नियम प्रतिपादित करने के लिए किया जाता है। बुद्ध ने इस 'प्रतीत्य समुत्पाद' नियम का प्रयोग मन के विज्ञान को समझने और मन के विकारों को नष्ट करके आत्मज्ञानी बनने के लिए किया।

● बुद्ध की एक महत्त्वपूर्ण खोज यह थी कि ज्ञानेंद्रियों से मिलने वाले संकेतों से हमारे शरीर में संवेदना होती है। उदाहरण के लिए, जब हम किसी मित्र, शुभचिंतक, प्रेमिका या किसी प्राकृतिक नज़ारे को देखते हैं तो मन को अच्छा लगता है और शरीर और मन/चित्त में सुखद संवेदना होती है। जब शेर या सांप को देखते हैं तो भयभीत होकर शरीर कांप जाता है, भय से शरीर में दुःखद सिहरन होती है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति से भेंट हो जाए जिसने कभी धोखा दिया था तो भी शरीर में प्रतिक्रिया होती है और मन में नफ़रत के भाव पैदा होते हैं। इस प्रकार हर घटना से हमारे शरीर पर तीव्र या धीमी प्रतिक्रिया अवश्य होती है।

बुद्ध की इस नई खोज के अनुसार शरीर पर होने वाली वेदना/संवेदना, पदार्थ/भौतिक वस्तुओं और मन/चित्त के मध्य संवाद के लिए एक अतिरिक्त तत्त्व है। संवेदना की एक अहम भूमिका है। 'संवेदना हमारी इंद्रियों द्वारा प्रदान की गई जानकारी को संसाधित/तैयार/उपयोगी बनाने के लिए भौतिक पदार्थों और मन/चित्त के बीच मध्यस्थता करती है। संवेदना का स्वभाव अनित्य (momentary) है, क्षणभंगुर है। संवेदनाएं सतत् प्रकट और नष्ट होती रहती हैं।

● जब हमारी चेतना, ज्ञानेंद्रियों की सहायता से किसी बाहरी भौतिक वस्तु से टकराती है तो हमारा चेतन मन पहले जानने (cognition) और पहचानने (perception) का काम करता है। फिर इसका मूल्यांकन (evaluation) करता है और निष्कर्ष निकालता है। जिस निष्कर्ष को चेतन मन उचित/ठीक मानता है कि ऐसी स्थिति में ऐसा व्यवहार करना उचित है तो ऐसी प्रतिक्रिया रूपी निष्कर्ष/परिणाम को

चेतन मन अवचेतन मन में भेज देता है जहां वह संचित/स्टोर हो जाता है; और जब भी इसी प्रकार की स्थिति दोबारा पैदा होती है तो अवचेतन मन चेतन मन को सूचना भेजता है कि पिछली बार ऐसी स्थिति में इस प्रकार की प्रतिक्रिया की थी। इस पिछले निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए चेतन मन दोबारा स्थिति का मूल्यांकन करता है और नए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए नई प्रतिक्रिया करता है और उसे स्टोर होने के लिए अवचेतन मन में भेज देता है। जब इसी प्रकार की स्थिति दोबारा पैदा होती है तो हम अवचेतन मन में संचित/स्टोर हुई प्रतिक्रिया के आधार पर ही व्यवहार करते हैं। यह प्रतिक्रिया समय के साथ-साथ पक्की हो जाती है और इसे 'संस्कार' कहा जाता है। संस्कार हमारे विचारों, भावनाओं और कार्यों को प्रभावित करते हैं। ये संस्कार वैज्ञानिक दृष्टि से सही या गलत हो सकते हैं। यह प्रक्रिया मनुष्य के मन में लगातार चलती रहती है।

- गौतम बुद्ध ने अपने दर्शन में चार आर्य सत्यों की परिकल्पना की है:

दु:ख है, दु:ख का कारण है, दु:ख निरोध/निवारण (दु:ख से पूर्ण रूप से मुक्ति) किया जा सकता है और दु:ख से मुक्ति का मार्ग/रास्ता है।

बुद्ध ने विपस्सना विधि का विकास किया जिसे उन्होंने दु:ख-निवारण का एक रास्ता बताया, जिस पर चलकर एक व्यक्ति अपने जीवन में समता भाव से जीना सीख जाता है। इस साधना विधि को सीखकर हर व्यक्ति जीवन और ब्रह्मांड की समस्याओं को उनके पूरे कद में समझने की कला सीखकर और प्रकृति के नियमों का अनुसरण करके, वैज्ञानिक जीवन पद्धति अपनाकर सफलतापूर्वक जीवन यात्रा पूरी कर सकता है। इसी विधि को अपनाकर परमज्ञानी बन सकता है और इसी को निर्वाण प्राप्त करना कहते हैं।

गौतम बुद्ध ने उपरोक्त अवधारणाओं के आधार पर वैदिक काल की अवधारणाओं - ईश्वर की सत्ता, आत्मा-परमात्मा, कर्मफल, जातिवाद और यज्ञ आदि के कर्मकांडों - को सिरे से नकार दिया। बौद्ध चिंतन का प्रमुख वैचारिक अभियान तीन बातों पर केंद्रित था : वेद-प्रमाण (वेदों की अवधारणाओं को सत्य ज्ञान के आधिकारिक दस्तावेज़ के रूप में मानना) की अस्वीकृति; बलि और यज्ञों को भौतिक जगत की सुख सुविधाओं का संरक्षक विचार बनाए जाने का विरोध; और व्यक्ति या ब्राह्मण की श्रेष्ठता का खंडन। बुद्ध के चिंतन ने भारतीय चिंतन परम्परा को समकालीन वैज्ञानिक समझ के आधार पर विकसित करने का मूल आधार प्रदान किया। बाबासाहेब अम्बेडकर ने बौद्ध चिंतन के निष्कर्षों के आधार पर जातिविहीन समाज की परिकल्पना की और शोषित जातियों को बौद्ध धर्म अपनाने की प्रेरणा दी। यह एक क्रांतिकारी कार्यक्रम था जिसे अम्बेडकर के पूर्ण रूप से लागू करने से पहले ही इस दुनिया से चल बसे।

(लेखक महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष और शैक्षणिक मामलों के डीन रहे हैं।)

दो लघु कथाएं

समझ

एक आदमी का दिवाला निकल चुका था। उसने लोगों से ढेरों कर्ज़ा ले रखा था शहर कोतवाल ने हुक्म दिया कि आदमी को शहर-भर में घुमाकर लोगों को सावधान किया जाए कि यही वह शख्स है जो पैसा उधार लेकर लौटाता नहीं। इस काम के लिए एक कुर्द लकड़हारे का ऊंट मंगवाया गया। दिवालिये को ऊंट पर बैठाया गया। सुबह से शाम तक उसे शहर के अलग-अलग हिस्सों में ले जाकर लोगों को बताया गया, लोगो, अच्छी तरह पहचान लो, यही वह शख्स है जो किसी से कुछ लेकर लौटाता नहीं है।

यह काम पूरा होने पर ऊंट वाले ने अपने काम का हर्जाना मांगा।

'आखिर सारा दिन तुम कर क्या रहे थे?' दिवालिये ने उससे पूछा, 'क्या यही नहीं सुन रहे थे कि मैं सिर्फ़ लेता हूं, देता कुछ नहीं हूं।'

निर्विकल्प

मुल्ला नसरुद्दीन खेत में काम कर रहा था। संयोग से खुद बगदाद के खलीफ़ा अपनी एक घुड़सवार टुकड़ी के साथ उधर से गुज़रे। खलीफ़ा ने अपना घोड़ा रोककर मुल्ला से रास्ते के बारे में छोटी-मोटी जानकारी मांगी।

उस दिन खेत से लौटने के बाद मुल्ला ने किसी से बात नहीं की। दूसरा, तीसरा, चौथा दिन करते पूरा महीना गुज़र गया। मुल्ला ने अपने मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला। मुल्ला की बीवी परेशान हो गई - यह क्या बीमारी लग गई मुल्ला को?

उसका धीरज चुकने लगा तो उसने मुल्ला के एक करीबी दोस्त को बुलावा भेजा। कहा, एक-दो दिन रुककर पता लगाए कि मुल्ला किसी से बात क्यों नहीं करता।

पहले दिन तो मुल्ला ने दोस्त से भी बात नहीं की। दूसरे दिन देर रात तक दोस्त के बार-बार पूछने पर मुल्ला ने अपनी चुप्पी का रहस्य खोला। मुल्ला ने दोस्त को कहा, 'उसी मुंह से, जो खुद खलीफ़ा से मुखातिब हो चुका, अब किसी ऐरे-गैरे से क्या बात करूं?'

(मालचंद तिवाड़ी की कृति सूफ़ी कहानियां से साभार)

युगदृष्टा कबीर

कबीर युगदृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व और उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन हैं। कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की समस्याओं को भी पहचाना। कबीर के समय का समाज जात-पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्या आडंबरों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, हिंदू-मुसलिम वैमनस्य, शोषण-उत्पीड़न आदि से त्रस्त था। समाज के इस पतन में धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीर ने समय की नस को पहचाना। समाज के मार्गदर्शन के लिए एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ़ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवन के अनुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक-सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ़ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी वैसी ही हैं। कबीरदास के विचार आज भी वर्गविहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिंदू-मुसलिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए प्रासंगिक हैं।

कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण अत्यंत प्रगतिशील, मानवीय और यथार्थवादी था। उन्होंने अपने समय के समाज में फैले ऊंच-नीच, जातिभेद, छुआछूत और सामाजिक असमानता का तीखा विरोध किया। कबीर का मानना था कि मनुष्य की श्रेष्ठता जन्म, जाति या बाहरी पहचान से नहीं बल्कि उसके ज्ञान, आचरण और अनुभव से निर्धारित होती है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं :

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

यह कथन केवल धार्मिक संदर्भ तक सीमित नहीं है बल्कि व्यापक सामाजिक दर्शन प्रस्तुत करता है। कबीर ने उस व्यवस्था को चुनौती दी जिसमें व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी जाति और कुल के आधार पर किया जाता था। उन्होंने यह स्थापित किया कि आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए ज्ञान, सदाचार और सत्य निष्ठा ही वास्तविक मानदंड हैं। कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण समता और मानवता पर आधारित है। उनके अनुसार प्रकृति ने किसी भी मनुष्य को ऊंचा या नीचा नहीं बनाया। यह भेद समाज की कृत्रिम संरचना है। इसलिए वे कहते हैं :

एके पवन एक ही पानी, एके ज्योति समान।

इस पंक्ति में कबीर ने मानव एकता और सार्वभौमिक समानता का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। यह विचार आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों - समानता, न्याय और मानवाधिकार - से पूर्णतः मेल खाता है। कबीर ने सामाजिक भेदभाव के साथ-साथ धार्मिक विभाजन का भी विरोध किया। वे हिंदू और मुसलिम दोनों समुदायों की कट्टरता पर प्रहार करते हैं और बताते हैं कि बाहरी पहचान के आधार पर विभाजन निरर्थक है। उनका उद्देश्य समाज को विभाजन से निकालकर सामाजिक सौहार्द की ओर ले जाना था। वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहां व्यक्ति का सम्मान उसके गुण और कर्मों से हो, न कि जाति या धर्म से। कबीर का यह सामाजिक दर्शन आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है जब समाज अभी भी अनेक रूपों में भेदभाव और असमानता से जूझ रहा है।

इस प्रकार कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण मानव समानता, ज्ञान प्रधानता और सामाजिक न्याय को स्थापित करता है। यह दृष्टि न केवल मध्यकालीन समाज के लिए क्रांतिकारी थी बल्कि आज के लोकतांत्रिक समाज के लिए भी मार्गदर्शक है।

कबीर का काव्य धार्मिक आडम्बर, बाह्य दिखावे और कर्मकांड के तीखे विरोध के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित उन धार्मिक परंपराओं की आलोचना की जिनमें आंतरिक परिवर्तन और नैतिक जीवन की अपेक्षा बाहरी अनुष्ठानों और प्रतीकों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। कबीर का मानना था कि यदि मनुष्य का मन शुद्ध नहीं है तो बाहरी पूजा-पाठ, जप-तप और वेश-भूषा का कोई वास्तविक मूल्य नहीं हैं। इसी विचार को वे स्पष्ट करते हैं :

माला फेरत जुग भया, फिरा ना मन का फेर।
कर का मनका डार के, मन का मनका फेर।।

इस दोहे में कबीर ने गहरी मनोवैज्ञानिक सच्चाई व्यक्त की है। वे कहते हैं कि व्यक्ति हाथों से माला फेरते-फेरते उम्र गुज़ार देता है परंतु यदि उसका मन विकारों, लोभ, अहंकार और द्वेष से भरा है तो उसे जप का कोई लाभ नहीं। सच्ची साधना मन के परिवर्तन में है, न कि बाहरी क्रियाओं में।

वेद पुराण पढ़ अस पांडे, खर चंदन जस भारा।
रामनाम तत समझत नाहीं, अंत पड़े मुख छारा।।

कबीर ने पाखंडी साधुओं, कर्मकांडी ब्राह्मणों और अंधानुकरण करने वालों पर भी प्रहार किया। वे उन लोगों की आलोचना करते हैं जो मंदिर-मस्जिद जाते हैं, व्रत उपवास करते हैं, विशेष वेश धारण करते हैं परंतु व्यवहार में सत्य और करुणा का अभाव होता है। कबीर के अनुसार धर्म का सार आचरण में है, प्रदर्शन में नहीं। वे कहते हैं :

दाढ़ी, मूछ मुड़ाय के हुआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहीं मूड़िए, जा में भरिया खोट।।

उनका आडंबर-विरोध केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक और नैतिक जीवन पर भी लागू होता है। वे व्यक्ति को स्वयं को जांचने और आंतरिक शुद्धता की ओर प्रेरित करते हैं। उनका संदेश है कि धर्म का वास्तविक रूप मानवता, प्रेम और सत्य आचरण में निहित है। समकालीन संदर्भ में भी कबीर की यह दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक है। **आज भी समाज में धार्मिक आयोजन, अनुष्ठान और प्रतीकात्मक आचरण प्रचुर मात्रा में दिखाई देते हैं परंतु नैतिकता और मानवीय संवेदना का ह्रास भी साथ-साथ देखा जाता है। ऐसे समय में कबीर का संदेश हमें यह याद दिलाता है कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के भीतर सद्गुणों का विकास करना है, न कि केवल बाहरी क्रियाओं का निर्वाह करना।**

कबीर का सामाजिक और आध्यात्मिक चिंतन सांप्रदायिक सद्भाव की भावना से ओतप्रोत है। वे ऐसे समय में हुए जब समाज में हिंदू और मुसलिम का धार्मिक-विभाजन, कट्टरता और आपसी अविश्वास व्याप्त था। कबीर ने दोनों समुदायों की बाह्य धार्मिक ज़िद और संकीर्णता की आलोचना करते हुए ईश्वर की एकता तथा मानव धर्म की विशेषता पर बल दिया। इसी भाव को भी इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं :

हिंदू कहे मोहि राम पियारा, तुर्क कहे रहमाना।
आपस में दोऊ लरि-लरि मरते, मरम ना काहू जाना।।

इस प्रकार कबीर का आडंबर और कर्मकांड-विरोध धार्मिक चेतना को आंतरिक शुद्धता, नैतिकता और आत्मानुभूति की ओर मोड़ने का सशक्त प्रयास है जो आज भी उतना ही सार्थक और आवश्यक है।

(प्रस्तुति : मनीषा)

काज़ी नज़रुल इस्लाम की कविता

सुनो मूर्खो!

मनुष्य से घृणा करके
कौन लोग
कुरान, वेद, बाइबल को
चूम रहे हैं बेतहाशा

किताब और ग्रन्थ छीन लो
जबरन उनसे
मनुष्य को मारकर ग्रन्थ पूज रहा है
ढोंगियों का दल

सुनो मूर्खो !
मनुष्य ही लाया है ग्रन्थ
ग्रन्थ नहीं लाया किसी मनुष्य को !

('विद्रोही कवि' के नाम से विख्यात बांग्लादेश के राष्ट्रकवि)

सुरेश बरनवाल की कविताएं

युद्ध की अनिवार्यता

युद्ध इसलिए होते हैं
ताकि भविष्य में और युद्ध न हों
और
भविष्य में युद्ध को रोकने के लिए
हमेशा युद्ध होते रहेंगे

युद्ध की विभीषिका

युद्ध की विभीषिका
इससे मत गिनो
कितने मरे
कितने घायल हुए
कितना रक्त बहा
युद्ध की विभीषिका
इससे गिनो
कितने ज़िंदा आदमी
मर चुके लोगों की लाश ढोते
खुद लाश बन गए
उनकी आंखों से कितना आंसू बहा

मज़दूर बनाम राष्ट्र

यह भी तो एक युद्ध है
कि एक मज़दूर
दिन-भर की दिहाड़ी के बाद
आधा राशन लिये घर लौटता है
उसके बच्चे
हर रोज़ युद्धभूमि में उतरते हैं
हसरतों को मारते हैं
यह ऐसा युद्ध है
जिसमें
दो राष्ट्र तो नहीं लड़ते
पर एक राष्ट्र
फिर भी हार जाता है

रपट

ज़िला स्तरीय शिक्षा सभा

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति एवं शहीद वीरेंद्र स्मारक समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में, पानीपत ज़िले के खंड समालखा में श्री चैतन्य टेक्नो स्कूल, पावटी के सभागार में शिक्षा सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधि शामिल रहे। कार्यक्रम का संचालन शहीद वीरेंद्र स्मारक समिति के सचिव डॉ. शीशपाल द्वारा किया गया। इसमें समालखा खंड और इसराना खंड के सरकारी और प्राइवेट स्कूलों के 70 से अधिक अध्यापक-अध्यापिकाओं तथा ज़िला शिक्षा अधिकारी श्री राकेश बूरा तथा पूर्व डिप्टी डीईओ श्री राजवीर धीमान, रिटायर्ड प्रिंसिपल, मुख्याध्यापकों, मुख्याध्यापिकाओं तथा ज्ञान-विज्ञान समिति के कार्यकर्ताओं सहित 100 से अधिक प्रतिभागी शामिल हुए।

शिक्षा सभा की अध्यक्षता डॉ. दिनेश अबरोल (सदस्य, दिल्ली साइंस फ़ोरम), सुश्री कमला मेनन (सचिव, दिल्ली साइंस फ़ोरम), शहीद वीरेंद्र स्मारक समिति के उप प्रधान सतीश चौहान एवं हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति की प्रधान सुश्री शीतल द्वारा संयुक्त रूप से की गई। सभा की शुरुआत शहीद वीरेंद्र नाट्य मंच के कलाकारों द्वारा मोमीन के नेतृत्व में जनपक्षीय गीत 'अमन के हम रखवाले' से की गई। इस कार्यक्रम के वक्ता दिल्ली उच्च न्यायालय के वकील एवं प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता अशोक अग्रवाल ने बताया कि उन्होंने सार्वजनिक शिक्षा बचाने के लिए समय-समय पर कोर्ट में जनहित याचिकाएं डाली हैं। उनका मानना है कि यदि सरकारी स्कूलों में केंद्रीय स्कूलों जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं तो बच्चों की संख्या बढ़ेगी। उन्होंने कहा कि अध्यापकों की स्थाई नियुक्ति होनी चाहिए। अध्यापक शिक्षा की रीढ़ है। उन्होंने बताया कि कोरोना महामारी के बाद देश में बाल श्रम में वृद्धि हुई है तथा प्रवासी बच्चे ज़रूरी कागज़ात की कमी के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

दूसरी वक्ता अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच की प्रवक्ता प्रो. मधु प्रसाद ने कहा कि अध्यापकों को पढ़ाने के अलावा दूसरे काम भी दिए जाते हैं जिससे बच्चों की पढ़ाई बाधित होती है। यदि स्कूलों को बचाना है तो आधारभूत ढांचे पर काम करना पड़ेगा। इसके लिए शिक्षा का बजट बढ़ाने की आवश्यकता है। अगर सरकारी स्कूल बंद हो गए तो देश के अधिकांश बच्चे शिक्षा से वंचित हो जाएंगे। हमारे बच्चों को अवसर चाहिए और अवसरों के लिए समानता होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि बच्चों को पढ़ाते समय पीटना नहीं चाहिए। बच्चों को प्यार से सिखाया जा सकता है, उनका भी आत्मसम्मान होता है। उन्होंने बताया कि अति पिछड़े वर्ग के बच्चे भी अपने समाज से ज्ञान लेकर स्कूल में आते हैं। शिक्षा का अर्थ ही यह है कि हम आज जहां है, कल उससे आगे जाएं। उन्होंने कहा कि मेरा मानना है सही नॉलेज कॉमन स्कूलों से ही आएगी।

ज़िला शिक्षा अधिकारी श्री राकेश बूरा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया कि पानीपत ज़िले में किशनपुरा और बापौली के स्कूलों का परीक्षा परिणाम 100 प्रतिशत रहा। उन्होंने कहा पानीपत ज़िला राज्य के टॉप 10 स्कूलों में है। उन्होंने किवाना गांव (एस एम सी) की तारीफ़ करते हुए कहा कि हमें ऐसे मॉडल से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। उन्होंने बताया कि हमने पानीपत के लिए एक नारा बनाया है – 'शिक्षित पानीपत, विकसित पानीपत'। हमें अपने शिक्षकों पर गर्व है। अध्यक्ष मंडल से दिल्ली साइंस फ़ोरम की सेक्रेटरी कमला मेनन ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर कुछ सवाल उठाए। अध्यक्ष मंडल के दूसरे सदस्य डॉ. दिनेश अबरोल ने अपनी टिप्पणी में कहा कि पढ़-लिखकर डिग्री प्राप्त कर, बड़े पैकेज प्राप्त करना ही शिक्षा का कार्य नहीं है। शिक्षा का कार्य विश्व दृष्टिकोण के साथ-साथ अपने आसपास की बदहालियों को जानना है। ग्लोबल वॉर्मिंग के होने वाले प्रभाव, बढ़ते जल संकट, प्रदूषित होते पर्यावरण की जानकारी और उस पर काम करना भी एक शिक्षित व्यक्ति का दायित्व बनता है। इस अवसर पर प्रवेश त्यागी और आशु संध्या के निर्देशन में शहीद वीरेंद्र नाट्य मंच द्वारा सरकारी शिक्षा तंत्र बचाने का आह्वान करता नाटक 'ले किताबें चल पड़े' का मंचन किया गया, जिसे सभी दर्शकों ने बहुत सराहा।

अंत में शहीद वीरेंद्र स्मारक समिति के उप प्रधान सतीश चौहान ने सरकारी शिक्षा बचाव के इस विमर्श में भाग लेने के लिए सभी गणमान्य अतिथियों का आभार व्यक्त किया। इस सभा में समिति के ज़िला सचिवमंडल के सदस्य वेदपाल, मदनपाल छोक्कर, मास्टर सतीश गाहल्याण, सीताराम, ज़िला कार्यकारिणी सदस्य चिराग, प्रवीण, संगीता नारायणा, रामनिवास, वीरसिंह, मास्टर कुलदीप धीमान, मास्टर श्रीकांत तथा खेत मज़दूर यूनियन और किसान सभा के साथियों सहित इंडस्ट्री वर्कर शामिल रहे। वॉलंटियर्स की भूमिका में सत्येंद्र पाल, स्टीफ़न मैथ्यू और नाटक टीम के सदस्य शामिल रहे।

(प्रस्तुति : वेदपाल, राज्य सचिवमंडल सदस्य, हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति।)

जन स्वास्थ्य अभियान का प्रस्ताव

हमारा स्वास्थ्य, हमारी आवाज़, हमारा अधिकार!

स्वास्थ्य अधिकार और सार्वभौमिक स्वास्थ्य व्यवस्था (Universal Health Care) के लिए राष्ट्रीय अभियान (2026-27)

अभियान की भूमिका

आज पूरे भारत में बढ़ते अभाव, अस्थिरता और असमानता के कारण हमारा समाज और व्यवस्थाएं टूट रही हैं। डिजिटल शर्तों, प्रशासनिक बाधाओं, सरकारी बजट कटौती की नीतियों, और बढ़ते निजीकरण के कारण जनता के बड़े हिस्से को कल्याणकारी योजनाओं, यहां तक कि बुनियादी सार्वजनिक सेवाओं, से बाहर धकेला जा रहा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्थाओं को कमज़ोर किया जा रहा है, बीमा-आधारित योजनाएं वास्तविक सुरक्षा देने में विफल हो रही हैं, और करोड़ों लोग बुनियादी, सस्ती और सम्मानजनक स्वास्थ्य सेवा पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। देश-भर में समुदायों को अधिकारों से वंचित होना पड़ रहा है, भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ रहा है, और अब इन सभी अनुभवों को एक व्यापक और सामूहिक प्रतिक्रिया के रूप में एक साथ लाने की आवश्यकता है।

जन स्वास्थ्य अभियान (JSA) एक स्पष्ट सिद्धांत का दृढ़ता से दावा करता है : स्वास्थ्य सेवाओं में सभी को शामिल किया जाना चाहिए, और किसी को भी स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि यह हमारा बुनियादी अधिकार है। निजीकरण, बहिष्कार और कॉर्पोरेट संचालित स्वास्थ्य सेवा का विरोध करने के साथ-साथ, हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था को मज़बूत करने के लिए और व्यावहारिक स्थानीय समाधानों को आगे बढ़ाने के लिए समुदायों, फ्रंटलाइन स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, ग्राम पंचायतों और स्थानीय लोकतांत्रिक संस्थाओं के साथ मिलकर काम करने की ज़रूरत है।

जन स्वास्थ्य अभियान के नेतृत्व में प्रस्तावित यह राष्ट्रीय स्वास्थ्य अभियान, जन स्वास्थ्य अभियान के द्वारा दिसंबर 2025 में दिल्ली में आयोजित और सफल रहे 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य अधिकार अधिवेशन' की नींव पर खड़ा होगा। यह अभियान निम्नलिखित परस्पर जुड़े हुए पांच प्रमुख मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करेगा :

स्वास्थ्य की स्थितियां (Health Situations): लोगों से सीधे बात करना और स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित होने, बहिष्कार और भेदभाव, इलाज के बढ़ते खर्च, स्वास्थ्य से जुड़ी बाधाओं और स्थानीय स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थिति की वास्तविकताओं का दस्तावेज़ीकरण करना।

स्वास्थ्य एकजुटता (Health Solidarities): इस सांझा सिद्धांत के आधार पर कि स्वास्थ्य सेवाएं बिना किसी बाधा के सभी को मिलनी चाहिए, विभिन्न सामाजिक समूहों और आंदोलनों के बीच एकता बनाना।

स्वास्थ्य सुधार के उपाय (Health Solutions): सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं पर लोगों का अधिकार स्थापित करते हुए, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच बेहतर बनाने के लिए व्यावहारिक, जन-केंद्रित और स्थानीय परिस्थितियों पर आधारित सुधार के रास्ते खोजना।

स्वास्थ्य व्यवस्था (Health Systems): सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP), स्वास्थ्य बीमा योजनाओं और कॉर्पोरेट मॉडलों को चुनौती देते हुए, सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था की रक्षा करना, उसका विस्तार करना, और उसे अधिक जनतांत्रिक बनाना।

स्वास्थ्य संघर्ष (Health Struggles): स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े अनुभव, गैर बराबरी, निजीकरण और व्यवसायीकरण के खिलाफ़ विभिन्न स्तरों पर चल रहे संघर्षों को मज़बूत करना।

(प्रस्तुति : डॉक्टर रणबीर सिंह दहिया, संयोजक, जन स्वास्थ्य अभियान, हरियाणा; एवं ज्ञान-विज्ञान आंदोलन के वरिष्ठ साथी।)

31 मार्च 1865 - 26 फ़रवरी 1887

भारत की पहली महिला डॉक्टर आनंदीबाई जोशी

– अनिता शर्मा

आनंदीबाई जोशी भारत की पहली महिला डॉक्टर बनीं। उनका जन्म 31 मार्च 1865 को पुणे में हुआ। छोटी-सी उम्र में ही उनका विवाह गोपाल राव जोशी से हो गया जो उनसे उम्र में 20 साल बड़े थे। पर आनंदीबाई के लिए यह सौभाग्य की बात रही कि गोपाल राव उदार विचारों के और स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे।

मात्र 14 वर्ष की उम्र में ही एक बच्चे की मां बनीं आनंदीबाई। परंतु चिकित्सा सुविधा उपलब्ध न होने की वजह से उनके पुत्र की मृत्यु हो गई। इस घटना से दोनों पति-पत्नी को आघात पहुंचा। गोपाल राव जोशी ने आनंदी को डॉक्टर बनाने के बारे में सोचा। आनंदीबाई पहले से ही मराठी भाषा में शिक्षित थी। उस समय किसी महिला का पढ़ा-लिखा होना बड़ी बात थी।

आनंदीबाई भी गोपाल राव जोशी से सहमत हुईं और उन्होंने भी डॉक्टरी की पढ़ाई करने का मन बना लिया। भारत में उस दौर में किसी महिला का विदेश जाकर पढ़ाई करना धर्म-विरोधी था। भारत का समाज पितृसत्तात्मकता और रूढ़िवाद में जकड़ा हुआ था। ऐसे में एक महिला का ऐसा कदम अनेक चुनौतियों से भरा हुआ था। आनंदीबाई और गोपाल राव को कट्टरवादियों की घोर आलोचना का सामना करना पड़ा। परंतु दृढ़निश्चयी आनंदीबाई और उनके पति इस आलोचना से बिल्कुल नहीं घबराए। विदेश जाकर पढ़ाई करने के लिए पर्याप्त धन भी उनके पास नहीं था लेकिन वे यह काम अपने लिए नहीं बल्कि समाज के लिए करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने निस्संकोच लोगों से मदद मांगी और कुछ प्रगतिशील लोग उनकी मदद करने के लिए सामने भी आए और इस तरह अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए आनंदीबाई डॉक्टरी की पढ़ाई करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के पेंसिलवेनिया गईं। वहां जाकर उन्होंने डॉक्टरी की पढ़ाई की। 1886 में उन्होंने अपने इस सपने को पूरा किया। भारत आकर वे अब जनसेवा में लग जाना चाहती थीं। मगर दुर्भाग्य से विदेश में रहते हुए अपने धर्म का पालन करते हुए उन्होंने अनेक कठिनाइयां सही थीं जिससे उनके स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ा और वे बीमार रहने लगीं। इसी बीमारी में तपेदिक के चलते 26 फ़रवरी 1887 को उनका निधन हो गया। आनंदीबाई को इतिहास में स्त्री समानता की लड़ाई में एक योद्धा की तरह हमेशा याद रखा जाएगा। उनके संघर्ष और उनके बलिदान हमेशा हमारे प्रेरणा स्रोत रहेंगे।

(लेखिका हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति, हिसार की उपाध्यक्ष हैं।)

लीडर जब आंसू बहाकर लोगों से कहते हैं कि मज़हब खतरे में है तो इसमें कोई हकीकत नहीं होती। मज़हब ऐसी चीज़ ही नहीं कि खतरे में पड़ सके, अगर किसी बात का खतरा है तो वो लीडरों का है जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए मज़हब को खतरे में डालते हैं।

- सआदत हसन मंटो (11 मई 1912 - 18 जनवरी 1955)

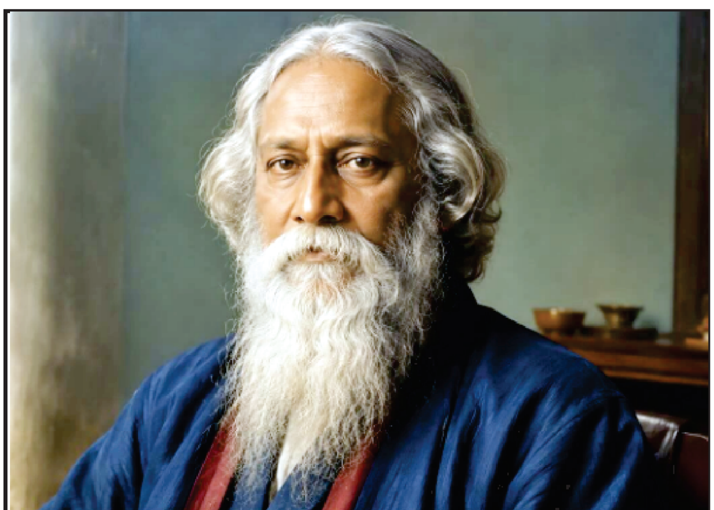

अंधकार प्रकाश की ओर चलता है, परन्तु अंधापन मृत्यु की ओर।

- रवीन्द्र नाथ टैगोर (7 मई 1861 - 7 अगस्त 1841)

********* प्रकाशक : हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति, प्रोडक्शन एवं डिज़ाइन - मनीषा *********